आमुख

स्वतन्त्रता मिल जाने के बाद हमारे देश में अन्य क्षेत्रों की भाँति शिक्षा के क्षेत्र में भी आमूल परिवर्तन हो रहे हैं। शिक्षा का उद्देश्य है बालकों को देश का भावी नागरिक बनाना और उन्हें मनुष्यता के गुणों से विभूषित करना। जब तक विदेशी सरकार यहाँ थी, उसने न केवल इस ओर ध्यान ही नहीं दिया, बल्कि इस प्रकार के प्रयत्नों को रोकने की भी चेष्टा की। महात्मा गांधी ने जब असहयोग आन्दोलन के समय राष्ट्रीय शिक्षा की आवश्यकता पर जोर दिया तो देश के विभिन्न स्थानों में राष्ट्रीय विद्यापीठों की स्थापना हुई। उस समय स्वर्गीय श्री रामदास गौड़ ने इसी दृष्टि से हिन्दी की पाठ्य पुस्तकें तैयार की थीं, जिन पर सरकार ने रोक लगा दी। अब परिस्थिति बदल गयी है। अतः देश में केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारें इस दिशा में तेजी से अग्रसर हो रही हैं। महात्मा गांधी द्वारा निर्दिष्ट बेसिक शिक्षा-पद्धति को अपनाया जा रहा है और नीचे की कक्षाओं से ही बालकों में राष्ट्रीयता और संस्कृति की भावना भरने का प्रयत्न किया जा रहा है। कहना न होगा कि यह शिक्षा पद्धति संसार में होने वाले शिक्षा सम्बन्धी आधुनिकतम प्रयोगों के मेल में और उनके आधारपर निर्मित हो रही है। अतएव यह राष्ट्रीय और सांस्कृतिक होने के साथ ही साथ पूर्ण वैज्ञानिक भी है।

संस्कृति में भाषा और साहित्य की शिक्षा का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। यदि शिक्षा के अन्य अंग जैसे विज्ञान, इतिहास, भूगोल गणित आदि बालक के ज्ञान को विकसित और समृद्ध करने के लिए हैं तो साहित्य का उद्देश्य उसके हृदय को परिष्कृत करना और उसे सच्चा मनुष्य बनाना है। यही नहीं, अन्य शिक्षा का माध्यम भी भाषा है। अतः इस दृष्टि से भी भाषा का सम्यक् ज्ञान होना बालकों के लिए आवश्यक है। यदि उनका भाषा सम्बन्धी ज्ञान अच्छा नहीं

है, तो वे न तो किसी विषय को अच्छी तरह समझ सकते हैं और न अपनी ही बात अच्छी तरह दूसरों को समझा सकते हैं। इसके अतिरिक्त भाषा साहित्य का माध्यम भी है। साहित्य को समझने के लिए भाषा का सम्यक् ज्ञान होना चाहिये। नीचे की कक्षाओं में तो भाषा का ज्ञान ही पर्याप्त होता है, किन्तु उत्तरोत्तर उच्च कक्षाओं में साहित्य का भी ज्ञान अपेक्षित होता है। साहित्य ही मनुष्य को सच्चा मनुष्य बनाता, उसे सन्मार्ग पर प्रवृत्त करता है। साहित्य में किसी जाति के अतीत, वर्तमान और भविष्य तीनों ही प्रतिबिम्बित होते हैं। सुसंस्कृत बनने के लिए अतीत का ज्ञान, वर्तमान के साथ योग और भविष्य के प्रति आशा का होना अपेक्षित है। साहित्य इस प्रकार जातीय संस्कृति का परिचय कराता और मानव-संस्कृति की स्थापना के लिए मनुष्य को प्रेरित करता है। इस दृष्टि से बालक को सच्चा देशभक्त, सुसंस्कृत नागरिक और पूर्ण मनुष्य बनाने के लिए भाषा और साहित्य की शिक्षा अत्यन्त आवश्यक है।

किन्तु और साहित्य सम्बन्धी पाठ्य-पुस्तकों के प्रणयन की दृष्टि यदि राष्ट्रीय और मनोवैज्ञानिक नहीं है तो प्रणेता का सब प्रयत्न व्यर्थ होगा। विदेशी सत्ता का अवरोध हट जाने पर भी राष्ट्रीयता का सच्चा स्वरूप अभी जन-जीवन में नहीं दिखलाई पड़ता। यह राष्ट्रीयता एक ओर तो देश के अतीत से सम्बन्ध स्थापित करती है और दूसरी ओर वह अन्तरराष्ट्रीयता का भी विरोध नहीं करती बल्कि उसके साथ कदम बढ़ाने वाली होती है। ऐसी ही राष्ट्रीयता आज समाज के लिए अपेक्षित है और केवल राष्ट्रीय दृष्टिकोण होने से ही पाठ्य-सामग्री उपयोगी और प्रभावोत्पादक नहीं हो सकती, उसे मनोवैज्ञानिक ढग से भी उपस्थित करने की भी आवश्यकता होती है ताकि बालकों के ऊपर वह बलपूर्वक थोपी हुई न मालूम पड़े। यह ढग ऐसा होना चाहिये कि बालकों का मन स्वयमेव पाठ्य सामग्री में रमता चला जाय और इस तरह ज्ञान-वृद्धि के साथ ही साथ उसका हृदय भी उदारता और राष्ट्रीयता की भावनाओं से परिपूर्ण होता जाय।

उपर्युक्त उद्देश्यों को दृष्टि में रख कर ही प्रान्त की राष्ट्रीय सरकार ने अपनी नयी शिक्षा-नीति निर्धारित की है और उसी दृष्टि से इस पुस्तक का भी निर्माण हुआ है। शिक्षा विभाग की विज्ञप्ति और उसके द्वारा स्वीकृत पाठ्यक्रम के अनुसार ही इस पुस्तक में भी पाठों और विषयों का चुनाव हुआ है। इस पुस्तक को तैयार करने में सम्पादक का दृष्टिकोण राष्ट्रीय और मनोवैज्ञानिक रहा है, यह बात पुस्तक में प्रारम्भ से अन्त तक दिखलाई पड़ेगी। अपनी प्राचीन संस्कृति के प्रति आस्था उत्पन्न करने और वर्तमान को एक स्वर सुन्दर और सुखद भविष्य की कल्पना जाग्रत करने का प्रयत्न भी इसमें किया गया है। पाठ, पाठकों की मानसिक स्थिति के प्रतिकूल न हो जायें अथवा बालक उनसे ऊब न जाँय, इस बात का भी पूर्ण ध्यान रखा गया है, और इसीलिए प्रारम्भ में सरल विषयों और सरल भाषा के पाठ रखे गये हैं जो बाद में उत्तरोत्तर भाव और शैली की दृष्टि से गम्भीर और बुद्धि सापेक्ष होते गये हैं, किन्तु रोचकता का ध्यान सर्वत्र रखा गया है

लेखों, कविताओं और उनके विषयों के चुनाव के सम्बन्ध में शिक्षा विभाग के निर्देशों का यथावत् पालन किया गया है। पूरी पुस्तक का लगभग चालीस प्रतिशत स्वयं सम्पादक द्वारा लिखा गया है, शेष सामग्री अपने विषयों के विशेषज्ञों से संग्रहीत की गयी है। यहाँ इस बात का ध्यान रखा गया है कि वे लेखक अपनी भाषा, शैली की विशेषता के कारण अपना विशिष्ट स्थान रखते हों और अपने क्षेत्र के प्रतिनिधि लेखक हों। इस प्रकार इस पुस्तक में हिन्दी साहित्य के प्राचीन और नवीन शैलियों के अधिकांश कवियों और लेखकों का प्रतिनिधित्व हो गया है। अतः आशा की जाती है कि इस पुस्तक को पढ़ कर विद्यार्थियों को केवल विविध विषयों का ज्ञान ही नहीं होगा प्रत्युत हिन्दी साहित्य का भी एक सामान्य परिचय उन्हें मिल जायगा। इस प्रकार इससे बालकों को साहित्य मन्दिर के द्वार पर लाकर खड़ा कर दिया गया है जिससे वे साहित्य देवता की प्रभा की सम्यक् झाँकी

ले सकें और उनके मन में ऐसी जिज्ञासा और लालसा उत्पन्न हो जाय कि वे साहित्य-मन्दिर में भीतर तक जाकर काफी निकट से उस देवता का दर्शन कर सकें।

यहाँ अपने अध्यापक बन्धुओं का ध्यान विशेप रूप से इस बात की ओर दिलाना चाहता हूँ कि हिन्दी के राष्ट्रभाषा हो जाने पर हिन्दी के अध्यापकों पर बहुत बड़ा उत्तरदायित्व आ गया है। हिन्दी की सर्वांगीण उन्नति का भार बहुत कुछ हिन्दी के अध्यापकों पर ही है। सब के लिए साहित्यकार बनना तो सम्भव नहीं है, परन्तु बालकों को साहित्य के क्षेत्र में पहुंचा देना और कुछ को साहित्यकार बना देना असम्भव नहीं है। कक्षा में केवल पाठ्य-पुस्तकों को पढ़ा देने से ही यह काम नहीं पूरा हो सकता। अतएव यह अध्यापकों की ही जिम्मेदारी है कि वे समय समय पर अन्ताक्षरी, वादविवाद, नाट्य-अभिनय, हस्त-लिखित पत्रिका, कविता-पाठ आदि का आयोजन करें और बालकों को इनमें भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करें। बालक पुस्तकालयों से कौन सी पुस्तकें लेकर पढ़ें अथवा कारयित्री प्रतिभा होने पर किस प्रकार की रचना लिखें, यह सब बताना और रचनाओं का संशोधन करना भी उन्हीं का काम है। कक्षा में अध्यापन की शैली भी मनोवैज्ञानिक होनी चाहिए जिससे विद्यार्थी पाठों को पूर्ण रूप से हृदयंगम कर लें। इस प्रकार उनका सौन्दर्य जाग्रत और विकसित होगा जिससे वे अपने भावों और विचारों को सुन्दर और स्वाभाविक रूप से अभिव्यक्त कर सकेंगे।

अन्त में हम उन लेखकों और कवियों के प्रति अपना आभार प्रकट करते हैं जिनकी कृतियाँ इस पुस्तक में ली गयी हैं। बालकों के मानसिक स्तर को ध्यान में रख कर उनकी कृतियों में कहीं-कहीं काट-छांट भी की गयी है। आशा है, उदार विद्वज्जन इसके लिए हमें क्षमादान करेंगे।

—सम्पादक

विषय-सूची

[१]

राष्ट्रगीत

[प्रत्येक स्वतंत्र देश का अपना निजी राष्ट्रध्वज, राष्ट्रचिह्न और राष्ट्रगीत हुआ करता है। हमारा देश अब पूर्ण स्वतंत्र हो गया है। उसने भी कांग्रेस के तिरंगे झण्डे को, जिसकी छाया के नीचे उसने स्वतंत्रता का संग्राम जीता, कुछ परिवर्तन के साथ अपना राष्ट्रध्वज स्वीकार कर लिया है। शेरों की मूर्तियों से युक्त अशोकस्तम्भ को उसने अपना राष्ट्र चिह्न मान लिया है। 'वन्देमातरम्' और 'जन गण मन अधिनायक' ये दोनों गीत भी राष्ट्रगीत के रूप में मान लिये गये हैं। देश का विभाजन हो जाने के बाद कुछ प्रान्तों के अलग हो जाने के कारण इस कविता के कुछ अंश को परिवर्तित और अनूदित कराकर हमारी राष्ट्रीय सरकार ने उसे राष्ट्रगीत के रूप में स्वीकार किया है।]

अधिनायक, भाग्यविधाता, कामरूप, उत्कल, मंगलदायक

जन-गण मन अधिनायक जय हे,
भारत——भाग्य——विधाता !
कामरूप, पंजाब, मराठा,
गुर्जर, द्राविड, बंगा।
उत्कल, विन्ध्य, हिमाचल,
यमुना गंगा-जलधि-तरंगा।
तव शुभ नामे जागे,
तव शुभ आशिष माँगे,
गाये तव जय-गाथा !
जन-गण-मंगलदायक जय हे
भारत भाग्य विधाता !
जय हे, जय हे, जय हे,
जय जय जय जय हे !

परिचय

महाकवि रवीन्द्रनाथ टाकुर इस गीत के रचयिता हैं। उनके जीवन-काल में ही उनकी यह कविता बहुत ही लोकप्रिय हो गयी थी और उनकी 'गीताजलि' नामक पुस्तक पर संसार का सर्वश्रेष्ठ पुरस्कार 'नोबुल प्राइज' मिलने के बाद तो आप विश्व-कवि कहलाने लगे। कवीन्द्र रवीन्द्रने भारतवर्ष की काव्यधारा को एक नयी दिशा में मोड़ दिया। अपनी कविता द्वारा उन्होंने मनुष्य की आत्मा को स्वतंत्र बनने और विश्व में व्याप्त भेद को मिटाकर सब को देशों, जातियों और धर्मों की सीमा से ऊपर उठाने का प्रयत्न किया। इसके अतिरिक्त उनमें राष्ट्रीयता की भावना भी कूट कूट कर भरी थी। अपनी भावनाओं को मूर्त रूप देने के लिए उन्होंने शान्ति निकेतन नाम की सांस्कृतिक संस्था की स्थापना की जो अब भी दिनोंदिन उन्नति कर रही है। महात्मा गान्धी रवि बाबू को गुरुदेव कहा करते थे।

विशेष—इस गीत में ऐसे शासन-तंत्र की जय-ध्वनि की गयी है जो जनता का, जनता के लिये और जनता द्वारा निर्मित हो अर्थात् जनतंत्रात्मक राज्य का, जिससे जनता का मंगल-विधान हो, विश्वकवि ने गुण-गान किया है।

अभ्यास

सामान्य प्रश्न—

१. इस गीत में किन किन प्रान्तों का नामोल्लेख किया गया है? भारत में कांग्रेस द्वारा मान्य और कितने प्रान्त हैं जिन का नाम इसमें नहीं आ सका है?

२. भारत का भाग्य विधाता कौन है, जनता के मन पर शासन करने और उसका कल्याण करने वाला या बलपूर्वक उस पर शासन करने वाला विधान?

३. विभिन्न प्रान्तों के अतिरिक्त विन्ध्य और हिमाचल (जो अब

विन्ध्य प्रदेश और हिमाचल प्रान्त बन गये हैं') गगा यमुना और समुद्र की तरंगो को किस के नाम पर जागने और आशीष मागने की बात कही गयी है ?

शब्दाध्ययन—

१. नायक (नेता) शब्द के पहले 'अधि' उपसर्ग लगा कर अधिनायक शब्द बना जिसका अर्थ नेता से बदल कर शासक हो गया। इसी तरह कार, वास, अयन के पहले 'अधि' उपसर्ग लगा कर शब्द बनाओ तथा अर्थ बताओ।

२. कामरूप आसाम का प्राचीन नाम है जिसे बोल-चाल मे कॅवरू-कमच्छा (कामाख्या) कहते हैं। उसी तरह बग और गुर्जर का बिगडा रूप आज क्या है और मराठा का शुद्ध रूप क्या है ?

अलंकार—

१. कविता मे जब शब्दो के कारण चमत्कार उत्पन्न होता है तो उसे शब्दालकार, और अर्थों के कारण उत्पन्न चमत्कार को अर्थालकार कहते हैं। जब कविता की किसी पंक्ति मे पास ही पास कई शब्दों में एक ही अक्षर कई बार प्रयुक्त होता है तो वहा अनुप्रास अलकार (शब्दालकार) होता है जैसे 'पद-पद्म-पराग' में 'प' कई बार आया है। उपर्युक्त गीत में अनुप्रास अलकार खोजो।

आदेश

इस राष्ट्रगीत की अपनी एक विशेष लय है। सभाओं आदि में यह गीत उसी लय में गाया जाता है। तुम भी इसे उसी लय में गाने का प्रयत्न करो। स्कूलों मे प्रार्थना के रूप में भी यदि यह गीत गाया जाय तो सभी इस लय को आसानी से पकड सकते हैं। राष्ट्रगीत जब गाया जाय तब सभी को खड़ा हो जाना चाहिये।

---

[२]
झेंप—मेरी ढाल

[एक ओर तो ऐसे लोग होते हैं जो मित्र-मंडली में खूब चहकते हैं परन्तु सभा में उनकी जबान नहीं खुलती। दूसरी ओर ऐसे लोग हैं जिन्हें भाषण देने की बीमारी सी रहती है। ऐसे लोग प्रत्येक सभा में तो बोलने का अवसर ढूँढते ही रहते हैं, सामान्य सम्भाषण में भी भाषण-कला का प्रदर्शन करते हैं। नेताओं में तो बोलने की विशेष आदत होती है। यहां गांधीजी ने उन लोगों पर व्यंग्य करते हुये अपनी दुर्बलता स्वीकार की है और बतलाया है कि झेंप के कारण उनमें मितभाषिता आ गयी और इससे उनकी सत्यवादिता की रक्षा हुई।]

अन्नाहारी, उत्तेजन, अक्षमता, आलम्बन, अत्युक्ति

एक बार मैं वेंटनर गया। मजूमदार भी साथ थे। वहाँ एक अन्नाहारी घर था, उसमें हम दोनों रहते थे। 'एथिक्स आफ डायट' (आहार-नियम) के लेखक इसी जगह रहते थे। हम उनसे मिले। यहाँ अन्नाहार को उत्तेजन देने के लिए एक सभा हुई। उसमें हम दोनों को बोलने के लिए कहा गया। दोनों ने 'हाँ' कर लिया। मैंने यह जान लिया था कि लिखा हुआ भाषण पढ़ने में यहाँ कोई आपत्ति न थी। मैं देखता था कि अपने विचारों को सिलसिलेवार और थोड़े में प्रकट करने के लिए कितने ही लोग लिखित भाषण पढ़ते थे। मैं ने अपना व्याख्यान लिख लिया। बोलने की हिम्मत नहीं थी, पर जब पढ़ने खड़ा हुआ तो बिल्कुल न पढ़ सका। आँखों के सामने अंधेरा छा गया और हाथ-पैर काँपने लगे। भाषण मुश्किल से फुल्सकेप का एक पन्ना रहा होगा। उसे मजूमदार ने पढ़ सुनाया। मजूमदार का भाषण तो बढ़िया हुआ, श्रोतागण करतल-ध्वनि से उनके वचनों का स्वागत करते जाते थे। इससे मुझे

बड़ी शर्म मालूम हुई और अपने बोलने की अक्षमता पर बड़ा दुःख हुआ।

विलायत में सार्वजनिक रूप में बोलने का अंतिम प्रयत्न मुझे तब करना पड़ा जब कि विलायत छोड़ने का अवसर आया, परंतु उसमें मेरी बुरी तरह फजीहत हुई। विलायत से विदा होने से पहले अपने अन्नाहारी मित्रों को हॉबर्न भोजनालय में मैं ने भोजन के लिए निमंत्रित किया था। मैं ने विचार किया कि अन्नाहारी भोजनालयों में तो अन्नाहार दिया जाता है; परन्तु मांसाहार वाले भोजनालयों में अन्नाहार का प्रवेश हो तो अच्छा। यह सोच कर मैंने इस भोजनालय के व्यवस्थापक से खास तौर पर प्रबंध करके अन्नाहार की तजवीज की। यह नया प्रयोग अन्नाहारियों को बड़ा अच्छा मालूम हुआ। यों तो सभी भोज भोग के ही लिए होते हैं, परन्तु पश्चिम में उसे एक कला का रूप प्राप्त हो गया है। भोजन के समय खास सजावट और धूम-धाम होती है, बाजे बजते हैं और भाषण होते हैं सो अलग।

इस छोटे से भोज में भी यही सारा आडम्बर हुआ। अब मेरे भाषण का समय आया। मैं खूब सोच-सोच कर बोलने की तैयारी करके गया था। थोड़े ही वाक्य तैयार किये थे, परन्तु पहले ही वाक्य से आगे न बढ़ सका। एडिसन वाली गत हुई। उसके झेंपूपन का हाल मैं पहले कहीं पढ़ चुका था। 'हाउस आफ कामन्स' में वह व्याख्यान देने खड़ा हुआ। 'मेरी धारणा है', 'मेरी धारणा है', यही तीन बार कहा परन्तु उसके आगे न बढ़ सका! अंग्रेजी शब्द जिसका अर्थ 'धारण करना' है, गर्भ धारण के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है। इसलिए जब एडिसन आगे न बोल सका तो एक मसखरा सदस्य बोल उठा—"इन साहब ने तीन बार गर्भ धारण किया पर पैदा कुछ न हुआ!" इस घटना को मैं ने ध्यान में रख छोड़ा था और एक छोटी सी विनोदयुक्त

वक्तृता देने का विचार किया था। मैं ने अपने भाषण का श्रीगणेश इसी कहानी से किया, पर वहीं अटक गया। जो सोचा था सब भूल गया। और विनोद तथा हास्य युक्त भाषण करने जाते हुए मैं खुद ही विनोद का पात्र बन गया। "सज्जनों, आपने जो मेरा निमंत्रण स्वीकार किया इसके लिए मैं आप का उपकार मानता हूं।" कहकर मुझे बैठ जाना पड़ा।

यह झेंपूपन जाकर ठेठ दक्षिण अफ्रिका में टूटा। बिल्कुल टूट गया हो, सो तो अब भी नहीं कह सकते। अब भी बोलते हुए विचारना तो पड़ता ही है। नये समाज में बोलते हुए सकुचाता हूं। बोलने से पीछा छूट सके तो जरूर छुड़ा लूं। और यह हालत तो आज भी नहीं है कि यदि किसी संस्था या समाज में बैठा होऊं तो खास बात कर ही सकूं या बात करने की इच्छा ही हो।

परन्तु इस झेंपू स्वभाव के कारण मेरी फजीहत होने के अलावा कुछ नुकसान न हुआ—कुछ फायदा ही हुआ है। बोलने के संकोच से पहले तो दुःख होता था; परन्तु अब सुख होता है। बड़ा लाभ तो यह हुआ कि मैं ने शब्द की किफायतशारी सीखी। अपने विचारों को काबू में रखने की आदत सहज ही हो गई। अपने को मैं यह प्रमाण-पत्र आसानी से दे सकता हूं कि मेरी जबान अथवा कलम से बिना विचारे अथवा बिना तौले शायद ही कोई शब्द निकला हो। मुझे याद नहीं पड़ता कि अपने भाषण या लेख के किसी अंश के लिए शर्मिन्दा होने या पछताने की आवश्यकता मुझे कभी हुई हो। इसकी बदौलत अनेक खतरों से मैं बच गया और बहुतेरा समय भी बच गया, यह लाभ अलग है।

अनुभव ने यह बताया कि सत्य के पुजारी को मौन का अवलम्बन करना उचित है। जान-अनजान में मनुष्य बहुत बार

अत्युक्ति करता है, अथवा कहने योग्य बात को छिपाता है, या दूसरी तरह से कहता है। ऐसे संकटों से बचने के लिए भी अल्पभाषी होना आवश्यक है। थोडा बोलने वाला बिना विचारे नहीं बोलता। वह अपने हरेक शब्द को तौलेगा। बहुत बार मनुष्य बोलने के लिए अधीर हो जाता है। 'मैं भी बोलना चाहता हूँ' ऐसी चिट किस सभापति को न मिली होगी? फिर दिया हुआ समय भी उन्हें काफी नहीं होता, और बोलने की इजाजत चाहते हैं, एवं फिर भी बिना इजाजत के बोलते रहते हैं। इन सबके इतना बोलने से संसार का लाभ हुआ होता तो शायद ही दिखाई देता है। हाँ, यह अलबत्ता हम स्पष्ट देख सकते हैं कि इतना समय व्यर्थ जा रहा है। इसलिये यद्यपि आरंभ में मेरा झेंपूपन मुझे अखरता था, पर आज उसका स्मरण मुझे आनन्द देता है। यह झेंपूपन मेरी ढाल था। उससे मेरे विचारों को परिपक्व होने का अवसर मिला। सत्य की आराधना में उससे मुझे सहायता मिली ।

—महात्मा गांधी

परिचय

प्रस्तुत अंश महात्मा गांधी की 'आत्मकथा' अथवा 'सत्य के प्रयोग' नामक पुस्तक से संकलित किया गया है। मूल पुस्तक गुजराती में लिखी गयी है। भारतीयों का ही नहीं संसार का भी गांधी जी के परिचय की आवश्यकता नहीं। उनका सारा जीवन एक खुली पुस्तक रहा है। वे गुजराती के महान लेखक भी थे। सरलता, अकृत्रिमता तथा कम से कम शब्दों में अपने भावों को व्यक्त कर देना उन की शैली के मुख्य गुण हैं। अपनी आत्मकथा के द्वारा उन्होंने अपने जीवन के सत्य के प्रयोगों को उपस्थित किया है। इस प्रकरण से हम मित भाषिता की शिक्षा लेनी चाहिये।

अभ्यास

सामान्य प्रश्न

१. अन्नाहारी भोजन से क्या समझते हो? विलायत में गांधीजी ने अपने अन्नाहारी व्रत का पालन किस प्रकार किया?
२. 'विलायत में भोज को एक कला का रूप प्राप्त हो गया है' इससे क्या समझते हो? स्पष्ट करो।
३. मितभाषिता से सत्य की रक्षा किस प्रकार होती है?

शब्दाध्ययन—

१. किफ़ायतशारी, तजवीज, फजीहत, काबू के समानार्थी हिन्दी शब्द लिखो।
२. अन्नाहारी और मांसाहारी के समानार्थक शब्द बताओ।
३. 'श्रीगणेश' का अर्थ समझ कर बताओ।

व्याकरण—

१. संधिविच्छेद करो—
अन्नाहार, भोजनालय, अत्युक्ति।
२. जिस प्रकार 'सर्वजनिक' विशेषण बना है उसी प्रकार विधान, समाज, दिन से विशेषण बनाओ।

रचना—

१. अधोलिखित गद्यांश का अर्थ लिखो:—
अनुभव ने यह बताया है..................अधीर हो जाता है।
२. अपने प्रथम भाषण का अनुभव लिखो।

आदेश

गांधी जी का अनुकरण करते हुए मितभाषिता का अभ्यास करो।

[३]

दक्षिणी ध्रुव का अन्वेषण

[मनुष्य स्वभावतः जिज्ञासु है। वह प्रकृति के रहस्यों का पता लगाये बिना नहीं रह सकता। इसके लिए कितनों को अपनी जान से हाथ धोना पड़ा परन्तु खोज की प्रवृत्ति रुकी नहीं। दक्षिणी ध्रुव की खोज मनुष्य के ऐसे ही साहस का परिचय देती है। यह वीरता युद्ध-वीरता से कहीं श्रेष्ठ है।]

अन्वेषण, जिज्ञासा, प्रतिद्वन्द्वी, अनाहार, अवसन्न, विपन्न

लाभ, स्वार्थ और उपयोगिता के लिए प्राणों की बाजी लगाने वाले तो अनेक मिलते हैं परन्तु केवल जीवट और जिज्ञासा के लिए मृत्यु के मुख में प्रवेश करने वाले वीर बिरले हैं। ध्रुव-प्रदेशों के अन्वेषक उन्हीं निःस्वार्थ वीरों की श्रेणी में आते हैं! धरती का लाल धरती के ही दोनों छोरों से अपरिचित रह जाय, यह उसके लिये लज्जा की बात है। शायद इसी भावना से जिज्ञासु मानव साधन सुलभ होते ही ध्रुवों की खोज में निकल पड़ा। पियरी ने उत्तरी ध्रुव का पता लगा लिया परन्तु शैकलटन दक्षिणी ध्रुव से सौ मील इधर तक ही पहुँच कर लौट आया। इन दोनों समाचारों की धूम मच गयी। पियरी की सफलता पर सारा संसार प्रसन्न हो उठा परन्तु नार्वे का एक युवक ऐसा भी था जिसे जबर्दस्त ठेस लगी। वह था आमुंडसेन जिसके सारे जीवन की एकमात्र साध थी उत्तरी ध्रुव का अन्वेषण। दूसरी ओर, शैकलटन की असफलता पर जब सम्पूर्ण जगत खिन्न था, आमुंडसेन अन्वेषण के लिए सारी तैयारी कर चुका था। अब वहीं दक्षिणी ध्रुव के प्रयाण की योजना बनने लगी। इसी समय

स्काट की समाधि

कैप्टन स्काट
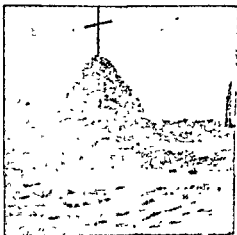
आमुण्डसेन

आमुंडसेन को कप्तान स्काट के दक्षिण ध्रुव जाने की खबर मिली। एक तो पियरी ने उसके सारे जीवन का लक्ष्य छीन लिया था, अब फिर प्रतिद्वन्द्वी होकर स्काट उसके द्वितीय लक्ष्य को छीनने चला। किन्तु वीरों का हृदय कपटी नहीं होता। सबसे छिपाने पर भी आमुंडसेन ने अपने प्रतिद्वन्द्वी से अपना अभिप्राय नहीं छिपाया।

आखिर एक दिन वह 'फ्राम' नामक जहाज को लेकर महासमुद्र की उत्ताल तरंगों पर निकल पड़ा। सबने यही समझा कि वह दक्षिणी अमेरिका का चक्कर लगा कर बेहरिंग के मुहाने से होता हुआ उत्तरी ध्रुव-सागर में प्रवेश करेगा। दक्षिणी अमेरिका पहुँचने से पहले उस के साथियों को भी नहीं पता था कि आमुंडसेन दक्षिणी ध्रुव जाना चाहता है। आमुंडसेन दक्षिणी अमेरिका से आगे बढ़ा और कप्तान स्काट न्यूज़ीलैंड से। संसार की आँखें स्काट पर लगी थीं; आमुंडसेन की यात्रा गुप्त थी।

आमुंडसेन हिमबंध (आइस बैरियर) की ओर बढ़ने लगा। 'तिमी खाड़ी' में पहुँचने पर उसने जगह-जगह अड्डे स्थापित करने का काम आरम्भ किया। सन् १९११ ई० की अप्रैल में अड्डे बनाने का काम समाप्त हुआ। अनुभवी ध्रुव-यात्री आमुंडसेन ने इस यात्रा की ऐसी योजना बनाई थी जो बराबर निर्विघ्न रूप से लागू होती रही। राह में न तो उसे अनाहार का कष्ट हुआ और न पथ चलने की थकावट का। सामग्री का भी अभाव नहीं हुआ। १७ अक्टूबर को आमुंडसेन सकुशल हिमबंध तक पहुँच गया। यहाँ से दक्षिण मेरु की अधित्यका की चढ़ाई आरम्भ हुई। ६ दिसम्बर को इस अधित्यका के सर्वोच्च स्थान पर पहुँच कर उसने उतरना शुरू किया। उस समय उसके मानसिक उद्वेग की सीमा न थी। ज्यों ज्यों वह दक्षिणी ध्रुव केन्द्र के निकट बढ़ता जाता, उसके मन में बार बार यही भावना उठती—"यदि इतने में स्काट पहुँच गया होगा, तो क्या होगा? क्या दुर्भाग्य

यहाँ भी उपहास करेगा? तब यहाँ से कौन सा मुँह लेकर लौटूँगा?"

१४ दिसम्बर को आमुण्डसेन दक्षिणी ध्रुव केन्द्र पर पहुंच गया। तब तक कप्तान स्काट वहाँ नहीं पहुंचे थे। नार्वे की पताका ध्रुवकेन्द्र पर फहराने लगी। भाग्य का विपर्यय देखिये कि जो आमुंडसेन उत्तरी ध्रुवकेन्द्र का अन्वेषक बनने का स्वप्न देखता था उसे अदृष्ट ने दक्षिणी ध्रुवकेन्द्र का अन्वेषक बना दिया। उस स्थान का नाम 'किंग होकन, सप्तम' रखा गया। प्रायः २४ घंटे तक वैज्ञानिक निरीक्षण करने के बाद वह कप्तान स्काट के लिए कुछ भोजन इत्यादि रखकर लौट पड़ा। १९१२ ई० के मार्च महीने में आमुण्डसेन के अन्वेषण का समाचार सारे संसार में फैल गया। परन्तु लोगों की आँखें स्काट पर लगी थीं कि आखिर जो खोज करने निकला था उस का क्या हुआ?

कप्तान स्काट दक्षिणी ध्रुव केन्द्र का प्रथम अन्वेषक नहीं बन सका परन्तु उसने जिस जीवट का परिचय दिया वह आमुंडसेन की खोज से कहीं अधिक गौरवशाली और अमर है। स्काट १९१० ई० की प्रथम जून को 'टेरा नोवा' जहाज से न्यूजीलैंड के लिए रवाना हुआ और वहाँ से १९ नवम्बर को तीन वर्ष की सामग्री के साथ ध्रुव केन्द्र की ओर बढ़ा। जनवरी के पहले सप्ताह में इवान्स अन्तरीप में जाड़े का अड्डा बनाया गया। वहाँ से रास 'हिम बंध' पार कर १४४ मील की दूरी पर एक टन डिपो बनाकर उसमें आवश्यक वस्तुयें रख दीं। इसी प्रकार जगह जगह एक सप्ताह की उपयोगी खाद्य सामग्री रख दी गई ताकि लौटने पर उसका उपयोग हो सके। इस तरह ६४–६५ मील पर एक एक डिपो बनाते हुए स्काट का दल वियर्डमोर ग्लेशियर की ओर चलने लगा। डिपो स्थापन में ही स्काट को बहुत समय—लगभग ११ महीना लग गया। वैज्ञानिक अनुसंधान और निरीक्षण के बाद १९११ ई० की दूसरी नवम्बर को ध्रुव केन्द्र की असली यात्रा आरंभ हुई। अब

तक आधे घोड़े मर चुके थे। फिर भी ३१ दिसम्बर को ८७ अक्षांश पारकर १९१२ ई० की ४ जनवरी को स्काट ने अपने आखिरी सहायक दल को भी विदा कर दिया। अब ध्रुव केन्द्र केवल १४५ मील शेष था। इस समय स्काटके साथ केवल चार आदमी थे—डाक्टर विल्सन (विज्ञान विभागके निरीक्षक), कप्तान ओट्स (घोड़े और खच्चरोंकी देखभाल करने वाले), लेफ्टिनेन्ट बावर्स (भोजन प्रबंधक) और एडगर इवांस। दो सप्ताहकी यात्राके पश्चात् १७ जनवरी १९१२ ई० को कप्तान स्काट दक्षिणी ध्रुव केन्द्र पर पहुंच गया। यह हमारे अनुमान से परे है कि वहाँ नार्वे की विजय पताका को लहराती हुई देखकर उस वीर हृदय को कैसा अनुभव हुआ होगा।

प्रतियोगिता मे असफल यात्रियोंकी वापसी यात्रा शुरू हुई और शुरू हुई उनके दुर्भाग्य की कहानी। इवांस पहला व्यक्ति था जो तुषार-दंशन से कातर होकर बियर्डमोर ग्लेशियरके पास गिर पड़ा और सिर में गहरी चोट लगनेके कारण वहीं चिर निद्रा मे निमग्न हो गया। इसी समय प्रकृति ने उग्र रूप धारण कर लिया। भीषण ठंड से सभी अवसन्न होने लगे। कप्तान ओट्स के पैर बेकार हो गये, फिर भी किसी प्रकार चलते रहे। अन्त में चलना असम्भव हो गया। उसके कारण उसके साथियों का जीवन भी विपन्न होने लगा। १६ मार्च की रात को सोते समय ओट्स ने प्रार्थना की कि फिर मेरी नींद न टूटे, ताकि निश्शंक होकर मेरे साथी आगे बढ़ सकें। सबेरे ओट्स ने आँखें खोलीं तो अपने को जीवित पाया। विपत्ति इसी को कहते हैं जब बुलाने पर मौत भी नहीं आती। फिर भी ओट्स नहीं हारे। वह मौत से भेंट करने स्वयं ही गेमे में निकल पड़े। उस समय तुषार-झटिका चल रही थी। सब ने ओट्स के संकल्प को समझ लिया पर बाधा देना बेकार था। वीर ओट्सने स्वेच्छापूर्वक मृत्यु का आलिंगन करके अपने साथियों को बाधा से मुक्त कर दिया।

अब तीन व्यक्ति शोकाच्छन्न चित्त होकर बर्फीली आँधी के बीच से चलने लगे। बर्फ के टुकड़े सूई की तरह शरीर में चुभने लगे। सारा शरीर दर्द से भर गया। अन्त में जब चलना असम्भव हो गया तो उनको खेमे के भीतर आश्रय लेना पड़ा। उस समय ११ मील और चलने पर वे एक टन-डीपो को पा जाते और मृत्यु के पंजे से छूट जाते। इधर केवल दो दिन का भोजन बाकी था। तुषार-वायु एक सप्ताह तक बहता रहा। अनाहार और ठंढ से उनकी जीवनी-शक्ति क्षीण होने लगी। कप्तान स्काट ने जब समझ लिया कि अब हम लोगों के जीवट की कहानी सुनाने वाला कोई भी वापस न लौट सकेगा तो मृत्यु से अवसन्न हाथों से अपनी डायरी लिखने लगे। चार दिनों के बाद सब कुछ समाप्त हो गया। खेमे के भीतर थी निस्तब्ध मृत्यु और बाहर था अनंत तुषार-मंडित प्रकृति का उन्माद-ताण्डव। १२ नवम्बर १९१२ को खोजियों ने देखा कि हिम की परतों में पड़ा है कप्तान स्काट तथा उनके साथियों का मृत शरीर और अमृत उत्सर्ग की कहानी उनकी डायरी।

—सम्पादक

अभ्यास—

सामान्य प्रश्न—

१. शैकलटन की यात्रा का आमुंडसेन पर क्या प्रभाव पड़ा?
२. आमुंडसेन की सफलता के क्या कारण थे?
३. कप्तान स्काट की विपत्तियों के क्या कारण थे?
४. आमुंडसेन और स्काट में से किसकी यात्रा अधिक वीरतापूर्ण है और क्यों?

शब्दाध्ययन—

निम्नलिखित शब्दों का अर्थ लिखोः—तुषार, उत्सर्ग, निस्तब्ध, अवसन्न।

व्याकरण—

सधि-विच्छेद—

शोकाच्छन्न, अनाहार, नीरोग ।

रचना—

१. निम्नांकित गद्यांश का सरलार्थ करो—लाभ स्वार्थ ····निकल पड़ा ।'

२. स्काट के कष्टों का वर्णन करो ।

———

[४]

बल या विवेक

[मध्यकालीन राजपूतानी वीरता का उदाहरण देते हुए, इस कविता में कवि ने पाठकों को यह बतलाने की चेष्टा की है कि जहाँ भी मनुष्य ने बहुत बुद्धि और विवेक से काम लिया वहां सच्ची कुरबानी और बलिदान नहीं कर सकता। बुद्धि और विवेक से काम लेने पर प्राणों की ममता बढ़ती है और तब हँसते-हँसते प्राणोत्सर्ग करना कठिन ही नहीं, असम्भव हो जाता है। इस कविता में दो राजपूत वीर केवल अपनी वीरता दिखलाने के लिए, बात की बात में अपना प्राण दे देते हैं। इसके मूल में केवल यही बात है कि मनुष्य को अपने प्राणों के लिए बहुत अधिक ममत्व नहीं होना चाहिये।]

जौहर, अश्व, भीरु, कदर्य

कहते हैं, दो नौजवान क्षत्रिय घोड़े दौड़ाते,
ठहरे आकर बादशाह के पास सलाम बजाते।
कहा कि, "दें सरकार, हमें भी घी आटा खाने को,
और एक मौका अपना कुछ जौहर दिखलाने को।"
बादशाह ने कहा, "कौन हो तुम? क्या काम तुम्हें दें?
"हम हैं मर्द बहादुर," झुककर कहा राजपूतों ने।
"इस का कौन प्रमाण?" कहा ज्यों बादशाह ने हँस के,
घोड़ों को आमने सामने कर वीरों ने कस के—
ऐंड़ मार दी और खींच ली म्यानों से तलवार,
और दिया कर एक दूसरे की गर्दन वार।
दोनों कटकर ढेर हो गये अश्व रह गये खाली,
बादशाह ने चीख मारकर अपनी आँख छिपा ली।

× × ×

दोनों कट कर ढेर हो गये, पूरी हुई कहानी,
लोग कहेंगे, "भला हुई यह भी कोई कुर्बानी ?
हँसी हँसी में जान गवा दो, अच्छा पागलपन है,
ऐसे भी क्या बुद्धिमान कोई देता गर्दन है ?"
मैं कहता हूँ बुद्धि भीरु है, बलि से घबड़ाती है,
मगर वीरता में ऐसे ही गर्दन दी जाती है।
सिर का माल किया करते है जहाँ चतुर नर ज्ञानी,
वहाँ नहीं गरदन चढती है, वहाँ नहीं कुर्बानी।
जिस के मस्तक के शासन को लिया हृदय ने मान,
वह कदर्य भी कर सकता है क्या कोई बलिदान ?

—रामधारी सिंह 'दिनकर'

परिचय

यह कविता हिन्दी के ओजस्वी कवि श्रीरामधारी सिंह 'दिनकर' द्वारा लिखी गयी है। दिनकर जी ने प्रारम्भ से ही सरकारी नौकरी में रहते हुए भी अत्यन्त ओजपूर्ण और राष्ट्रीय साहित्य की रचना की है, यह उनके सुदृढ व्यक्तित्व का प्रमाण है। 'रेणुका' 'हुंकार' 'रसवंती' 'द्वन्द्वगीत' 'सामधेनी' धूप छाँह' और 'कुरुक्षेत्र' उनकी काव्य पुस्तकें हैं। उनकी शैली की सब से बड़ी विशेषता यह है कि इन्होंने विषय को बड़े ही सरल शब्दों में और सीधे ढंग से कहा है जिस से पाठकों को समझने में बड़ी आसानी होती है।

अभ्यास

सामान्य प्रश्न—

१. दोनों राजपूत वीरों ने आपस में लड़ कर अपना बलिदान क्यों किया ?
२. उनका ऐसा करना विवेकपूर्ण था ?
३. कवि ने उनके कार्यों का किस प्रकार समर्थन किया है ?
४. क्या विवेक बुद्धि सचमुच कायरता उत्पन्न करती है और सहृदयता मनुष्य से बलिदान कराती है ?

शब्दाध्ययन—

१. निम्नलिखित मुहावरों का अर्थ बताओ—सलाम बजाना, मोल करना, जौहर दिखाना, आँख छिपाना, ढेर होना, गरदन देना।

२. इस कविता में किन-किन उर्दू शब्दों का प्रयोग हुआ है ?

अलंकार—

इस कविता में आये अनुप्रास अलंकार ढूँढ़ो।

रचना—'बल और विवेक' के संबंध में एक लेख लिखो और उसमें दिखलाओ कि अगर शक्ति में बुद्धि का योग नहीं है तो वह व्यर्थ है।

आदेश

दिनकरजी की 'धूप छाँह' 'हुँकार' और 'रेणुका' पुस्तकें पुस्तकालय से लेकर पढ़ो और उनकी काव्यशैली की विशेषताओं को उनमें ढूँढ़ो।

———

[५]

कुछ छोटी-छोटी बातें

[हमारा देश अब स्वतंत्र हो चुका है, किन्तु उस अनुशासन का आगमन अभी नही हो सका जो एक स्वतंत्र और उन्नत जाति के प्रत्येक व्यक्ति मे होना चाहिये। हम लोग अधिकारों की माग करने मे तो बहुत कुशल हैं किन्तु अपने कर्तव्यो का पालन करना आवश्यक नहीं समझते। यही नहीं, हम अनेक छोटी-छोटी बातों की ओर तो ध्यान ही नहीं देते जो हमारे कर्तव्य की सूची मे सब से आगे आती हैं और सभ्य और सुसंस्कृत होने के लिए आवश्यक समझी जाती हैं। छोटी छोटी बाते ही हमारे चरित्र का प्रधान अंग हैं, उनको छोटी समझना हमारी भूल है। ऐसी ही कुछ छोटी-छोटी बातों की ओर विद्वान लेखक ने हमारा ध्यान आकर्षित किया है। महात्माजी भी आजीवन इन छोटी किन्तु महत्वपूर्ण बातों पर बहुत जोर देते रहे।]

उन्नति का सब से अच्छा तरीका यह है कि हम स्वयं अपनी त्रुटियों को पहचानें और उन्हें दूर करने का प्रयत्न करें। सब से बड़ी कमी मुझे अपने यहाँ मालूम पड़ती है कि हमने अपने जीवन का रवैया कुछ ऐसा कर रखा कि हम एक दूसरे के विश्वास के योग्य नहीं रहे। हम जान-बूझ कर बेईमानी नहीं करना चाहते पर हमारे रहने का तरीका ही ऐसा हो गया है कि हमें छोटी बड़ी सभी बातों में एक दूसरे का भरोसा नहीं रहता। जब तक हमें इस तरह रहने का अभ्यास न हो कि हम पर दूसरे और हम दूसरों पर सब छोटी-बड़ी बातों में विश्वास कर सकें तब तक हम बेखटके जिन्दगी बसर नहीं कर सकते।

जब हम सब एक माला में गुँथ जायेंगे तब हमारी विजय हो जायगी।

अब मैं अपनी कथा आरम्भ करता हूं। दुनियाँ में सभी लोग कोई न कोई काम करते हैं। किसी का कोई पेशा है, किसी ने किसी काम को उठा रखा है। इसके कारण हमारा बहुत से लोगों से सम्बन्ध स्वतः हो जाता है। इन सब लोगों को इस बात का अधिकार है कि हम उनके प्रति अपना कर्तव्य पूरा करें। अधिकार और कर्तव्य साथ-साथ चलते हैं। मान लीजिये आप एक छोटे से गृहस्थ हैं, गृहस्थी और पेशे के काम में आप को ऐसा लगा रहना पड़ता है कि आपको इधर-उधर की बहुत सी बातों को जानने-समझने की फुरसत नहीं है। मेरा आप से यह आग्रह है कि आप अपना मकान साफ रखिये जिससे आप के पड़ोसियों को आप के मकान की गन्दगी के कारण कोई कष्ट न हो। आप के घर से कोई बीमारी निकल कर उन को न सतावे। सफाई का मतलब यह है कि सब चीजें साफ सुथरी ठीक तरह से, ठीक स्थान पर सदा रहें।

घर का कूड़ा करकट भी यदि अपने विशेष स्थान पर रहे तो वह साफ समझा जायेगा। घर का जेवर भी अगर गलत स्थान पर रहे तो वह गन्दा समझा जायेगा। जब आप झाड़ू दें तो केवल जमीन पर ही न दें बल्कि छत वगैरह भी साफ रखें। आप को ही आवश्यकता के समय आसानी होगी। सूई तो काफी खतरनाक चीज होती है और लापरवाही से छोड़ देने से बड़ा धोखा दे सकती है। अपनी-अपनी जगह पर सभी छोटी-बड़ी चीजें खूबसूरत लगती हैं। हमारी स्त्रियों और बहनों को रोज ही एक दो घंटे ताली के गुच्छे तलाश करने में लग जाते हैं जिससे उनका कितना ही समय नष्ट हो जाता है। अगर आप अपना घर साफ रखें अर्थात् सब चीजों को ठीक जगह पर रखें तो आप अपनी और दूसरों की पर्याप्त सेवा करेंगे।

आप को घर के बाहर अपने काम के लिए सड़कों पर तो निकलना ही पड़ता है। सड़क पर सब को ही चलने का अधिकार है और हमारा यह कर्तव्य है कि सड़क का प्रयोग हम इस तरह न करें कि उसके कारण किसी को खतरा हो। अगर आप अपना छाता कन्धे पर इस तरह रख कर चलते हैं कि उसकी नोक से आप के पीछे चलने वाले आदमी की आँख के फूटने का डर रहता है, या केले और नारंगी के छिलके लापरवाही से फेंक देते हैं जिस पर फिसल कर दूसरा चोट खा जाता है, तो अवश्य ही आप अच्छे नागरिक कहलाने के योग्य और अधिकारी नहीं हैं। अगर आप इतना ख्याल रखें कि आप की तरफ से दूसरों के साथ वैसा ही व्यवहार होना चाहिये जैसा आप दूसरों से अपने लिए चाहते हैं, तो संसार की कितनी ही दिक्कतें दूर हो जायँगी।

यद्यपि आप का मेरा कोई और सम्बन्ध न हो तब भी मेरा आप की तरफ और आप का मेरी तरफ कुछ कर्तव्य है ही जिन्हें हम दोनों को पूरा करना आवश्यक है। सड़क पर चलते हुए, रेल का सफर करते हुए, यदि हम याद रखें कि दूसरों का भी कुछ हक होता है तो अवश्य ही हम ऐसा व्यवहार करेंगे कि हर एक को यथा सम्भव पर्याप्त आराम मिल सके। हम एक दूसरे की आवश्यकताओं का ख्याल रखेंगे और जहाँ तक सम्भव होगा दूसरों को कष्ट न पहुचावेंगे। एक दिन मैं एक गली से गुज़र रहा था। किसी मजदूर ने छोटे-छोटे बाँसों का गट्ठर एक दूकान के सामने जोर से पटका। दूकानदार ने बिगड़ कर कहा—"इस तरह क्यों पटकते हो? क्या यह मंगनी की चीज है? इसके दाम लगे हैं।" मैं सहम गया। मेरा तो यह ख्याल था कि मंगनी की चीज की अपनी चीज से भी ज्यादा फिक्र करनी चाहिये। जिस हालत में उसे लिया उससे अच्छी नहीं तो कम से कम उसी हालत में उसे वापस करना ही चाहिए।

यदि हम सब इस बात का ख्याल रखें तो हमारे सामूहिक जीवन का बड़ा लाभ पहुंचेगा। मंगनी की चीजों को लेने देने के अतिरिक्त भी हमें दूसरों से बहुत काम रहता है। धोबी, भंगी, दर्जी भिश्ती से, हर तरह के दूकानदार से, साथ काम करने वालों से नौकरों से, कर्मचारियों से, दोस्तों और रिश्तेदारों से अर्थात् सभी प्रकार के लोगों से सदा ही काम लगा रहता है। अवश्य ही आप को शिकायत रहती है कि दूसरे लोग अपना काम ठीक तरह से ठीक वक्त पर नहीं करते और कितने लोग अकारण अनुचित व्यवहार करते रहते हैं। यदि आप उनसे पूछें तो आप को संभवतः यह जान कर आश्चर्य होगा कि ठीक इसी तरह की शिकायत उन्हें आप से भी है। आप ठीक समय से, अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार उनका भी काम नहीं करते और उनकी मेहनत का दाम भी नहीं चुकाते। ऐसा आप की तरफ से भी होना अनुचित है। यही सब कारण है कि किसी का किसी पर विश्वास नहीं रह गया है और समाज का सारा काम बिगड़ गया है। स्थिति ऐसी हो गई है कि कहीं कहीं तो किसी को खाने का न्यौता दिया जाय तो उसे स्वीकार करने पर भी यह विश्वास नहीं रहता कि मेहमान खाने के समय आ जायँगे। न मेहमान को विश्वास रहता है कि ठीक समय से पहुँचने पर खाना तैयार रहेगा।

यदि हम सब अपने नागरिक अधिकार और कर्तव्य को समझें, यदि हम सब—चाहे हम भंगी, दर्जी, धोबी, भिश्ती हों, चाहे दूकानदार, व्यापारी, व्यवसायी हों, चाहे वकील, डाक्टर, मौलवी, पण्डित हों, चाहे दफ्तर के लेखक या मुल्क के अफसर हों, अपना काम इस तरह से करें कि किसी परिचित अथवा अपरिचित को शिकायत का मौका न मिले; यदि हम घर पर, सड़क पर, दूकान में यह ख्याल रखें कि दूसरों की तरफ हमारा कुछ कर्तव्य है और उसे हम पूरा करते रहें, और साथ ही अपने अधिकार को भी समझ कर उस पर कायम रहें तो हमारे देश की उन्नति

बात की बात में हो सकती है। जो कठिन से कठिन समस्याएँ हमारे सामने आती हैं वह सरलता से हल हो सकती हैं, अगर हम साधारणजन समझदारी से काम करते रहें। अगर हम गफलत में पड़े रहेंगे और वर्तमान प्रकार के नागरिक जीवन से सन्तुष्ट रहेंगे और यह समझे बैठे रहेंगे कि देश की सेवा करने वालों की एक पृथक जाति होती है जिनका यही काम है; वे देश को आगे चलाने की फिक्र करें या न करें, हम सब को इस से मतलब नहीं है, तो एक नहीं हजार गांधीजी भी कुछ नहीं कर सकेंगे; क्योंकि ऐसे महापुरुष तो हमारे लिए काम कर रहे हैं और यदि हम ही उन्नति और परिवर्त्तन नहीं चाहते तो वे कर ही क्या सकते हैं ?

श्री श्रीप्रकाश

परिचय

यह लेख श्री श्रीप्रकाश जी की पुस्तक 'मेरे विचार' से लिया गया है जो उनके कई निबन्धों का संग्रह है। श्रीप्रकाश जी एक कुशल राजनीतिज्ञ, महान और प्रवीण वक्ता ही नहीं, एक उद्भट विद्वान, मौलिक विचारक, प्रथम श्रेणी के लेखक और चिन्तक भी हैं। आप बड़े ही विनोद-प्रिय और व्यंग्य करने वाले भी हैं। आप के जीवन का लक्ष्य और दूसरों के लिए सब से बड़ा उपदेश है अनुशासन और नागरिकता के नियमों का पालन। आप स्वयं भी कड़ाई के साथ उनका पालन करते हैं और दूसरों से भी इसी बात की आशा रखते हैं। इसी कारण आप सर्वप्रिय हैं। अभी तक आप आसाम प्रान्त के राज्यपाल (गवर्नर) थे पर इस समय केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल में मन्त्री हैं।

अभ्यास

सामान्य प्रश्न—

१—घर की सफाई से क्या समझते हो ?

२—सड़क पर चलते हुए किन किन बातों का ध्यान रखना चाहिए और क्यों ?

२—नागरिक के अधिकार और कर्तव्य से क्या समझते हो ?

शब्दाध्ययन—

१—जिन्दगी, बसर, बेईमानी, ये उर्दू के शब्द हैं किन्तु हिन्दी में भी इन शब्दों का प्रयोग होता है। इस लेख में ऐसे कौन-कौन से शब्द प्रयुक्त हुए हैं ?

२—सन्तोष सज्ञा से सन्तुष्ट विशेषण बना है, इसी तरह निम्नलिखित शब्दों से विशेषण बनाओ—रोष, तोष, क्लेश, आकर्षण।

व्याकरण—

१—इस वाक्य का वाक्य विश्लेषण करो—अब मैं अपनी कथा आरम्भ करता हूं।

रचना—

'हमारे नागरिक कर्तव्य' इस विषय पर एक लेख लिखो।

आदेश

सड़क पर आते जाते अथवा अपने दैनिक जीवन के व्यवहार में लेखक की बताई बातों का ध्यान रखो। एक डायरी बना कर ऐसी बातों का उल्लेख करो।

[६]

अजातशत्रु डॉ० राजेन्द्र प्रसाद

[हमारे देश में आज जितने भी बड़े नेता हैं उनमें से महात्मा गांधी का पक्का अनुयायी यदि कोई है तो वह राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद ही हैं। उनकी कष्ट-साधना, त्याग तपस्या और विशाल ज्ञान के फल स्वरूप ही देश की जनता ने उन्हें स्वतंत्र भारत का प्रथम राष्ट्रपति चुना है। इस पाठ में राष्ट्रपति के महान व्यक्तित्व की विशेषताओं का ही विश्लेषण किया गया है।]

गणतंत्र, समन्वय, प्रतिभा, विधान-परिषद्, मणि-कांचन संयोग, सम्बद्ध, अक्षुण्ण, अविरल।

यदि भारत के सच्चे प्रतिनिधि गांव हैं और गावों के सच्चे प्रतिनिधि किसान; तो भारतीय गणतंत्र के प्रथम राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसाद भारत के सच्चे प्रतिनिधि हैं। यद्यपि उन्होंने कभी खेती नहीं की, तथापि उनकी वेश-भूषा, उनका रहन-सहन और सब से बढ़ कर उनका हृदय तथा स्वभाव भारतीय किसान का सा है। सादगी उनका आभूषण है और निश्छलता उनका स्वभाव। न तो उनमें शहरी कृत्रिमता है और न दुराव। किसान की ही तरह उनकी व्यक्तिगत आवश्यकताएँ बहुत थोड़ी हैं। उनके शान्त, स्निग्ध, गम्भीर और अति सहिष्णु हृदय के भीतर भारतीय किसान का सच्चा प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता है। इसका सब से बड़ा प्रमाण यही है कि दिल्ली के 'गवर्नमेंट हाउस' में जाने पर पहली रात को हमारे राष्ट्रपति अपने परिवार वालों के साथ जीरादेई (उनकी जन्मभूमि) के विषय में बातें करते रहे। इसका कारण यह है कि गांवों से उनका निकट सम्बन्ध सदैव

बना रहा। साल भर वे चाहे जहाँ रहें परन्तु कम से कम एक बार अपने गांव जरूर जाते रहे हैं। सुनते हैं कि मन्त्री और विधान-परिषद् के अध्यक्ष होने पर भी जब-जब वे अपने गांव जाते थे, कोई न कोई बुढ़िया नई पुरानी चिट्ठियाँ लिये उनके पास पढ़वाने के लिए पहुँच जाया करती थी और राजेन्द्र बाबू बड़े प्रेम से उसकी चिट्ठी पढ़ कर सुना देते थे। उनकी सादगी के विषय में अनेक कहानियाँ प्रसिद्ध हैं। अभी हाल की बात है। विधान-परिषद् के अध्यक्ष होने के बाद राजेन्द्र बाबू अपने गांव गये थे। हथुआ की रानी ने उन्हें अपने यहाँ चलने का अनुरोध किया। स्मरण रहे कि हथुआ राज में राजेन्द्र बाबू के पूर्वज दीवान रह चुके थे। राजेन्द्र बाबू ने बात मान ली। परन्तु वहाँ अपने सम्मान में आयोजित दरबार में जाने पर वे मंच पर बैठने के बदले सामान्य जनों के साथ नीचे फर्श पर बैठ गये। सभी लोग ठक से रह गये। रानी तो एकदम चकरा गई। अन्त में बहुत कहने पर वे ऊपर जा सके। कहा गया है कि 'प्रभुता पाइ काहि मद नाहीं'। परन्तु राजेन्द्र बाबू को देख कर इस में सुधार करने की आवश्यकता मालूम पड़ती है। ज्ञान महान होकर भी कितना सरल होता है, यह देखना हो तो राजेन्द्र बाबू का सौम्य, निरभिमान और उदारमना मूर्ति देखें।

राजेन्द्र बाबू में सहृदयता कूट-कूट कर भरी है। उन्हें देख कर सहसा मुख से निकल पड़ता है—'हृदय की अनुकृति बाह्य उदार'! जान गुंथर ने लिखा है कि राजेन्द्र बाबू कांग्रेस के हृदय हैं। दूसरों का मन रखने के लिए कभी-कभी वे अपनी इच्छा के प्रतिकूल भी 'हाँ' कर देते हैं। शायद उन्होंने 'नहीं' कहना सीखा ही नहीं। ऐसे ही आदमी को सामान्य बोल-चाल में बहुत 'शीलो' कहते हैं। उन्होंने स्वयं अपनी आत्मकथा में लिखा है कि मुझ जैसे आदमी को किसी के साथ कटुता पैदा करने में बहुत दुःख होता है, ऐसा अनचाहा काम भारी मुश्किल पैदा करता है। इसीलिये वे

अजात-शत्रु हैं। चाहे कांग्रेस हो या उसके बाहर का कोई और दल, राजेन्द्र बाबू के शत्रु बहुत ही कम मिलेंगे। उनके स्वभाव की मृदुता विरोधियों को भी मोह लेती है। उनका हृदय जैसा एक शीश-महल में स्थित है, जिसकी प्रत्येक क्रिया अविकल रूप से बाहर दिखाई पड़ती है। इसीलिये जहाँ दलों में झगड़ा उत्पन्न होता है वहाँ राजेन्द्र बाबू से बढ़कर पंच मिलना मुश्किल दिखाई पड़ता है। उनकी लोकप्रियता के कारणों में यह भी एक है। भारतीयों का उनमें विश्वास है। कांग्रेस द्वारा प्रतिपादित और समर्थित 'हिन्दू कोड बिल' जैसे सुधार के विषय में प्राचीन संस्कारों से परिपूर्ण उनके किसान-हृदय ने सहमति नहीं दी।

हृदय और बुद्धि का मणि-कांचन-संयोग बहुत कम देखा जाता है। परन्तु राजेन्द्र बाबू इस समन्वय के जाज्वल्यमान उदाहरण हैं। वे आरंभ से ही प्रथम श्रेणी के विद्यार्थी थे। उनका जीवन तत्कालीन विद्वन्मण्डली में चर्चा का विषय रहा है। वे कलकत्ता विश्वविद्यालय के गिने चुने प्रतिभा-संपन्न नक्षत्रों में से एक थे। राजेन्द्र बाबू बुद्धि के जिस क्षेत्र में गये, उसमें अपनी ज्योति बिखेर दी। वे अपने समय के चोटी के वकीलों में से थे। जॉन गुंथर ने आज से ग्यारह वर्ष पहले लिखा था कि यदि वे कांग्रेस में न आये होते तो अङ्गरेजी सरकार के बड़े से बड़े पद को सुशोभित करते होते। या तो वे सुप्रीम कोर्ट के जज होते अथवा किसी प्रान्त के गवर्नर। उस समय किसी भारतीय के लिए यह बहुत बड़ी बात थी और बुद्धि की नाप के मानदण्ड ऐसे ही उच्च पद हुआ करते थे। परन्तु राजेन्द्र बाबू यह सब कुछ नहीं हुए और अच्छा ही हुआ; क्योंकि भारत की इस विलक्षण प्रतिभा का उपयोग तो कहीं और ही होना था। यदि लेखन-शक्ति के द्वारा ही किसी की विद्वता मापी जाय तो लेखक राजेन्द्र प्रसाद का स्थान भारत के गण्यमान विद्वानों में होगा। जेल में रह कर यथोचित पुस्तकों के अभाव में भी उन्होंने अङ्गरेजी में 'इन्डिया डिवाइडेड'

(खण्डित भारत) नाम की जो पुस्तक लिख डाली वह उनकी सूक्ष्म बुद्धि का प्रमाण है। उस समय तक और उसके बाद भी आज तक उस विषय पर इतनी गहन चिन्तनशील पुस्तक नहीं दिखाई पड़ी। स्मरण-शक्ति बुद्धि का ही एक गुण है और राजेन्द्र बाबू की स्मरण-शक्ति अद्भुत है। जेल में बैठे-बैठे बिना किसी डायरी अथवा कतरन के इतनी विशालकाय आत्मकथा लिख डालना खेल नहीं है। उसमें न जाने कितनी छोटी-छोटी घटनाओं का भी उल्लेख है। जिन्हें शायद उनसे संबद्ध लोग भूल चुके होंगे। फिर आत्मकथा की भाषा और शैली भी कितनी प्रवाहमयी है ? एक ओर उसमें वकीलों की सी नपी-तुली पदावली और दूसरी ओर साहित्यिकों सा भाषा-लालित्य। हिन्दुस्तानी के समर्थक राजेन्द्र बाबू ने यह ग्रन्थ लिख कर हिन्दी की एकता का आदर्श उपस्थित किया। वक्ता और लेखक का ऐसा अद्भुत संयोग नेताओं में पण्डित जवाहरलाल नेहरू को छोड़ कर अन्यत्र नहीं मिलता।

यह सब तो है। परन्तु राजेन्द्र बाबू में जो सब से बड़ी बात है, वह है निस्पृह सेवा तथा त्याग। प्रायः बुद्धि-प्रधान लोग चिन्तन में ही मग्न रहते हैं; उनमें क्रियाशीलता और कर्मठता की कमी दिखाई पड़ती है। परंतु राजेन्द्र बाबू के जीवन का आरंभ ही ऐसी कर्मठता से हुआ था। गांधीजी के आह्वान पर उन्होंने हजारों रुपये मासिक की अपनी वकालत छोड़ कर अपूर्व त्याग का परिचय दिया और देश-सेवा के लिए गांधीजी के पीछे चम्पारन में अनवरत श्रम करके किसानी कर्तव्यपरायणता का उदाहरण रखा। बिहार के भूकम्प में राजेन्द्र बाबू की दौड़-धूप उस प्रतिकूल स्वास्थ्य में भी अनुकरणीय थी। इसीलिए वे गांधीजी के परम प्रिय थे। नेताओं में सम्भवतः राजेन्द्र बाबू ही ऐसे हैं जो इतने व्यस्त जीवन में भी तकली अथवा चर्खा चला कर अपने पुराने अभ्यास को अक्षुण्ण रखते हैं। ऐसा ही कार्य-कुशल परिश्रमी

व्यक्ति एक साथ अनेक पदों को सँभाल सकता है। ऐसा उन्होंने कई बार किया है। इस समय एक ओर तो वे सर्वोदय समाज के अध्यक्ष हैं और दूसरी ओर भारतीय संघ के राष्ट्रपति। बीच-बीच में अनेक सम्मेलनों का भी कार्य-भार सँभालते रहते हैं। इतने क्षीण स्वास्थ्य के व्यक्ति को इतना कार्य-रत देख कर आश्चर्य होता है। परन्तु भारतीय आत्मा का प्रतिनिधित्व करने वाला व्यक्ति यदि इतने समन्वित गुणों से युक्त न हो तो फिर कौन हो ?

—सम्पादक

अभ्यास

सामान्य प्रश्न—

१—राजेन्द्र बाबू की सादगी और सरलता दिखाने के लिए लेखक ने कौन से उदाहरण दिये हैं ?

२—हमारे राष्ट्रपति अजातशत्रु क्यों कहे जाते हैं ?

३—उनकी विचक्षण बुद्धिमत्ता का पता कैसे चलता है ?

४—उनकी लिखी पुस्तकों के नाम बताओ।

शब्दाध्ययन—

१—निम्नलिखित शब्दों का अर्थ समझाओः—
प्रतिबिम्ब, गणतन्त्र, मणि काञ्चन संयोग, मान दण्ड, गण्यमान

२—इन शब्दों के विलोम शब्द बताओः—प्रतिकूल, क्रियाशीलता, कर्मठता, सूक्ष्म।

३—वक्ता के साथ 'अभि' उपसर्ग लगाकर अभिवक्ता शब्द बना जिसका अर्थ हुआ वकील। उसी तरह मान, योग और सिंचन का अर्थ बताते हुए उनमें अभि उपसर्ग लगाओ और नये बने शब्दों का अर्थ बताओ।

व्याकरण—

१—सन्धि-विग्रह करोः—सर्योदय, यथोचित, राजेन्द्र, निश्छलता, विद्वन्मण्डली, विद्यार्थी ।

२—किसी वाक्य में प्रयुक्त किसी शब्द का उस वाक्य के अन्य शब्दों से सम्बन्ध बताना शब्द-निरुक्ति या पदव्याख्या कहलाता है। निम्नलिखित वाक्य के सभी शब्दों की पदव्याख्या करोः— राजेन्द्र बाबू में सहृदयता कूट-कूट कर भरी है ।

---

[७]

कबीर-वाणी

[महापुरुषों, सन्तों और महाकवियों की वाणी में वह शक्ति होती है जो जन-साधारण के समूची जीवन धारा को एक नई दिशा में मोड़ने में समर्थ हो सकती है। उनकी वाणी ही कालान्तर में शास्त्रों और धार्मिक विश्वासों का रूप ग्रहण कर लिया करती है। ऐसे ही सन्तों की वाणी को जनता अपना आदर्श बना कर चलने का प्रयत्न करती है, उसे कण्ठस्थ करती और जीवन में उससे शक्ति ग्रहण करती है। ऐसे महापुरुषों की दृष्टि समाज में फैली सभी बुराइयों की ओर जाती है और वे कड़े से कड़े शब्दों में उनकी निन्दा करते हैं। कबीर भी ऐसे ही महापुरुष और सन्त हैं। उनकी वाणी ही इसका प्रमाण है।]

छिमा, मेर, बन्दगी, बिषै-बिकार, आपा

दुर्बल को न सताइये, जाकी मोटी हाय।
बिना जीव की स्वास से, लोह भसम हो जाय॥
ऐसी बानी बोलिये, मन का आपा खोय।
औरन को सीतल करै, आपहु सीतल होय॥
बोलत ही पहिचानिये, साहु चोर को घाट।
अन्तर की करनी सबै, निकसै मुख की बाट॥
साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
जाके हिरदय साँच है, ताके हिरदय आप॥
जहाँ दया तहँ धर्म है, जहाँ लोभ तह पाप।
जहाँ क्रोध तह काल है, जहाँ छिमा तहँ आप॥
निन्दक नेरे राखिए, आँगन कुटी छवाय।
बिन पानी साबुन बिना, निर्मल करै सुभाय॥

कबीरदास

एकै साधे सब सधे, सब साधे सब जाय।
जो गहि सेवै मूल को, फूलै फलै अघाय॥
कबिरा माला काठ की, बहुत जतन कर फेर।
माला साँस उसास की, जामे गाँठ न मेर॥
केसन कहा बिगारिया, जो मूँड़ो सौ बार।
मन को क्यों नहि मूड़िए, जामें विषै विकार॥
पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुवा, पण्डित हुवा न कोइ।
ढाई अच्छर प्रेम का, पढ़ै सो पण्डित होइ॥
पाहन पूजैं हरि मिलैं, तो मैं पूजौं पहार।
तातें यह चाकी भली, पीस खाइ संसार॥
काँकर पाथर जोरि कै, मसजिद लई चुनाइ।
ता चढ़ि मुल्ला बाँग दै, बहरा हुआ खुदाइ॥
तीरथ चाले दुइ जना, चित चंचल मन चोर।
एको पाप न उतरिया, दस मन लाया और॥
दिन भर रोजा रहत हैं, राति हनत हैं गाय।
यह तो खून वह बंदगी, कैसे खुसी खुदाय॥
बकरी पाती खाति है, ताकी काढ़ी खाल।
जो नर बकरी खात है, तिनका कौन हवाल।

परिचय

हिन्दी के प्राचीन महाकवियों में सन्त कबीरदास का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। पन्द्रहवीं शताब्दी के मध्यभाग में काशी में एक जुलाहे के घर जन्म लेकर इस अनपढ़ सन्त ने ज्ञान की जो धारा प्रवाहित की वह आज तक अबाध गति से बहती जा रही है। उनकी रचनायें उनके 'बीजक' नामक ग्रन्थ में संगृहीत हैं जो कबीरपंथ का धर्मग्रन्थ है। कबीर ने तत्कालीन सभी धर्मों का सार ग्रहण कर निर्गुण ब्रह्म की भक्ति का उपदेश दिया और धर्म तथा सामाजिक नैतिकता के

नाम पर फैली उन तमाम रूढ़ियों और बुराइयों पर कठोर प्रहार किया जो दम्भ, पाखण्ड और कपट के आधार पर बनी हैं।

अभ्यास

सामान्य प्रश्न—

१—कबीर के मत से ईश्वर का निवास कहाँ है ?
२—कबीर की दृष्टि से असली पंडित कौन है और 'पोथी पढ़ने' वाले पंडित क्यों नहीं हो सकते ?
३—उपर्युक्त दोहों में हिन्दुओं और मुसलमानों की किन बुराइयों की निन्दा कवि ने की है ?

शब्दाध्ययन—

१—'कबीर की भाषा सधुक्कड़ी भाषा है और उसमें पंजाबी, राजस्थानी, खड़ी बोली, अवधी, भोजपुरी, ब्रजभाषा आदि के शब्दों की विचित्र पचमेल खिचड़ी पकाई गयी है' इस कथन को सिद्ध करने के लिए उपर्युक्त दोहों से कुछ शब्द ढूढ़ो।
२—इन शब्दों का शुद्ध रूप क्या होगा ?—अच्छर, हिरदय, भसम, पाहन, मेर।

रस-अलंकार—'चित चंचल मन चोर' में कौन अलंकार है ?

आदेश

१—तुमने कबीर का 'निर्गुन' गाते हुए अपढ़ ग्रामीण जनता के बीच से लोगों को कभी सुना है ? यदि नहीं सुना हो तो गाँवों में जाकर पता लगाओ; कबीर के पद, दोहे आदि गानेवाले बहुत से लोग तुम्हें मिलेंगे। उनसे उन पदों का अर्थ पूछो।

[८]

सुमेरु-दर्शन

[हिमालय के रहस्यों का पता लगाने वाले दो तरह के आदमी मिलते हैं—एक तो वैज्ञानिक अन्वेषक और दूसरे मस्त मौला साधु-सन्यासी। वैज्ञानिकों ने सुरक्षा की पूरी तैयारी के साथ यात्रायें कीं परंतु इन फक्कड़ संन्यासियों ने नगे पॉव तथा नगे शरीर बर्फीले और दुर्गम पहाड़ों का पता लगाया। स्वामी राम इस द्वितीय कोटि के यात्रियों में से थे। उन्हें हिमालय से हार्दिक प्रेम था। अपनी आध्यात्मिक मस्ती मे ही उन्होने 'सुमेरु दर्शन' किया था। प्रस्तुत यात्रा विवरण उनके पत्रों से संकलित किया गया है। यहा एक ओर तो उनकी कवित्व शक्ति का पता लगता है, दूसरी ओर कष्ट सहिष्णुता और आत्मिक शक्ति का !]

अनुसरण, अतिशय, दृष्टिगोचर, हिमाच्छादित, सुरम्य, स्पर्धा

यमनोत्री की यात्रा के बाद गंगात्री पहुँचने मे यात्रियों को साधारणतः दस दिन से कम का समय नहीं लगता। केवल तीन ही दिन में राम यमनोत्री छोड़कर गंगोत्री पर पहुंच गया। उसने ऐसे मार्ग का अनुसरण किया, जिस पर नीचे मैदान के किसी निवासी के पैर शायद ही कभी पड़े हों। पर्वतीय लोग इस मार्ग को छाया-पथ के नाम से पुकारते हैं। लगातार तीन रातें राम ने जंगल की एकान्त गुफाओं मे काटीं। मार्ग में न कोई बस्ती और न कोई झोपड़ी दृष्टिगोचर हुई। दो पैरों वाला भी इस यात्रा में कहीं कोई न दिखाई पड़ा।

छाया-पथ यह इसलिये कहलाता है कि प्रायः वर्ष भर इस पर घनी छाया रहता है। किसकी ? तुम सोचते होगे—पेड़ों

की ? नहीं, इस पथ का अधिकांश भाग बादलों से घिरा रहता है। यमनोत्री और गंगोत्री के समीपवर्ती गाँवों के गड़रिये अपनी भेड़ों को चराते हुए वर्ष भर के दो तीन मास हर वर्ष इन्हीं जंगलों में बिताते हैं। वे प्रायः दो हिमाच्छादित शिखरों—बन्दर-पूछ और हनुमानमुख के समीप मिलते हैं। यही दोनों शिखर उन विश्वविख्यात भगिनी सरिताओं के स्रोतों को जोड़ते हैं। इस सारे पथ में फूलों की ऐसी अंधाधुंध बाढ़ रहती है कि सारा मार्ग सुनहले फर्श से ढका हुआ मालूम होता है। पीले, नीले और गुलाबी फूल तो रंग बिरंगे ढेर के ढेर चारों ओर फैले रहते हैं। ढेर के ढेर लिली, वायलेट, डायसी, ट्यूलिप, गुलगुल, धूप अतिशय प्यारे रंगों वाली ममिरी, केशर, इन्द्रस और अत्यन्त मनोहर सुगंध देने वाले तरह तरह के अनेक फूल, भेडगढ़ा, अपूर्व ब्रह्मकमल आदि अनेक पौधे वहाँ पाये जाते हैं, जिससे ये पर्वत ऐसे सुरम्य विहार वन जाते हैं कि जहाँ पृथ्वी और आकाश का स्वामी भी रहने के लिए ईर्ष्या कर सकता है।

कहीं कहीं पर तो हवा के झोंकों पर सुगंध का ऐसा तूफान उठता है कि राम का हृदय मधुर संगीत की भाँति नाच उठता है। वायु पर सवार सुगंधि का यह विशाल सरोवर—एकदम मधुर और एकदम कोमल—दो प्रेमी हृदयों के सम्मिलन की मुस्कराहट के समान मधुर और उनके वियोगजनि. अश्रुओं की भाँति कोमल। इन दीर्घाकार पर्वतों की चोटियों पर सुंदर खेत ऐसे सुशोभित रहते हैं जैसे बेलबूटेदार कालीन बिछे हों। इन पर देवतागण या तो भोजन करने उतरते होंगे अथवा नृत्य-उत्सव के लिए। कलकल ध्वनि वाले निर्झर और नुकीले पहाड़ों से गरजने वाले नद यत्र-तत्र इस अद्भुत दृश्य की शोभा बढ़ाते रहते हैं। किसी किसी चोटी पर मानों दृष्टि के सारे बंधन कट जाते हैं। चाहे जिस ओर दृष्टि दौड़ाइये—कहीं कोई रुकावट नहीं, न कोई पहाड़ी और न कोई असन्तुष्ट बादल। उन्मुक्त हो चाहे जहाँ

विचरे। कोई-कोई उच्च शिखर तो मानों आकाश में छेद करने की स्पर्धा सी करते हैं। वे अपनी उड़ान में रुकना जानते ही नहीं, ऊँचे उठते उठते मानों सर्वोच्च आकाश से एक हो रहे हैं।

यमनोत्री की गुफा में रहते समय राम का दैनिक भोजन था मर्चा (एक प्रकार का पहाड़ी अन्न) और आलू—वह भी चौबीस घंटों में केवल एक वार। फलतः कुछ दिनों में मंदाग्नि हो गई। इसी रुग्णावस्था के चौथे दिन बड़े तड़के गरम चश्मे में नहाने के बाद राम सुमेरु-यात्रा के लिए निकल पड़ा—केवल एक कोपीन पहन कर—न कोई जूता, न कोई पगड़ी और न कोई छाता। पांच हृष्ट पुष्ट पहाड़ी गरम कपड़े पहन कर राम के साथ हुए। सब से पहले शिशुरूपिणी यमुना तीन चार स्थलों पर पार करनी पड़ी। कुछ दूरी पर यमुना-घाटी का मार्ग एक विशाल काय हिमशिला-खण्ड से अवरुद्ध था, चालीस पचास गज ऊँचा और डेढ़ फर्लांग के लगभग लम्बा था। एकदम सीधे दो पर्वत शिखर दो दीवालों की भांति समर्थ दोनों ओर खड़े थे। जैसे सचमुच राम बादशाह का पथ रोकने के लिए उन्होंने कोई षड्यंत्र रचा हो। राम कब परवाह करता है। सुदृढ़ अचल संकल्प शक्ति के आगे बाधायें ऐसे भागती हैं जैसे आंधी के आगे बादल। हम लोगों ने पर्वत की पश्चिमीय दीवाल पर चढ़ना आरम्भ किया। कभी-कभी हमें पैर जमाने के लिए एक इंच भूमि नहीं मिलती थी। केवल एक ओर हाथों से सुगन्धित किन्तु कटीली गुलाब की झाड़ियों को पकड़ कर और दूसरी ओर पर्वतों की 'चा' नामक कोमल घास पर नन्हें-नन्हें डंठलों में उंगलियां गड़ा कर हम संभाले रहते थे। किसी भी क्षण हम मृत्यु के मुंह में जा सकते थे। यमुना की घाटी में बर्फ के ठंडे बिस्तरों से भरा हुआ एक गहरा खड्ड हमारे स्वागत के लिये मुँह फैलाये खड़ा था। जरा भी जिसका पैर कांपता वहीं आराम से सुशीतल हिम-समाधि में जाकर सो जाता। निचाई से आनेवाली यमुना की धीमी-धीमी

मर्मर ध्वनि अब भी हमारे कानों में पड़ती थी, जैसे कब्रिस्तान में मृत्युकालीन बाजा बजता हो। इस तरह हम लोग पूरे तीन घंटे तक बराबर मानों मृत्यु के मुख में चलते रहे। सचमुच विचित्र परिस्थिति थी—एक ओर मृत्यु हमारे लिए मुँह बाये खड़ी थी और दूसरी ओर ऐसी भीनी-भीनी सुगंधि वाली शीतल और मधुर वायु के झोंके आ रहे थे जिससे चित्त एकदम खिल उठता था। इस भयानक और दुरूह चढ़ाई के बाद हम लोगों ने उस भयंकर अवरोधक को पार कर लिया।

अब हमारी टुकड़ी पुनः एक एक सीधे खड़े पर्वत पर चढ़ने लगी। किन्तु कोई रास्ता, कोई पगडंडी—कुछ भी दृष्टिगोचर न होता था। था एक बड़ा भारी सघन जंगल, जिसमें वृक्षों की टहनियाँ भी ठीक समझ में न आती थीं। राम का शरीर कई जगह छिल गया। ओक, बर्च, देवदार और चीड़ के इस गम्भीर वन में एक घंटे तक संघर्ष करने के बाद अंत में हम लोग ऐसी खुली जगह में पहुँचे जहाँ वनस्पति अपेक्षाकृत बहुत छोटी थी। वायुमंडल में विद्युत जैसी लहरें फैल रही थी; सुगंध के फौव्वारे छूट रहे थे। इस चढ़ाई ने पहाड़ियों को बेदम कर दिया। पर इस व्यायाम से बीमार राम का चित्त प्रफुल्लित हो उठा। हम लोग चढ़ते-चढ़ते उस प्रदेश में पहुंचे जहाँ कभी पानी नहीं बरसता, केवल बर्फ गिरती है, अत्यन्त सौन्दर्यमयी उदारता के साथ।

यहाँ इन नंगे वीरान शिखरों पर हरियाली का भी नामो-निशान नहीं दिखाई देता था। हमारे आगमन के पहले ही सुन्दर हिमपात हुआ था। राम के स्वागत के लिए साथियों ने पत्थर की एक बड़ी चट्टान पर कालीन की भाँति एक लाल कम्बल बिछा दिया और पिछली रात जो आलू उबाले गये थे, भोजन के लिए परोस दिये। साथियों ने भी वही सीधा सादा भोजन बड़े अनुग्रह के साथ ग्रहण किया। भोजन करने के

धाद हम लोग तुरन्त ही उठ खड़े हुये। दृढ़ता के साथ हम लोग आगे बढ़े किन्तु ऊपर की चढ़ाई कठिन थी। एक नवयुवक थककर गिर पड़ा, उसके फेफड़ों और हाथों पैरों ने आगे चढ़ने से इनकार कर दिया। उसका सिर चक्कर खाने लगा। उस समय उसे वहीं छोड़ दिया गया। थोड़ी दूर चलने के बाद एक दूसरा साथी बेहोश होकर गिर पड़ा। उसे भी छोड़ा। शेष टुकड़ी आगे बढ़ी। किन्तु थोड़ी देर बाद तीसरा साथी भी गिरा। उसकी नाक फूट गई, रक्त बहने लगा। दो साथियों को लेकर राम ने आगे का मार्ग लिया। तीन अत्यन्त सुन्दर बरार (पहाड़ी हिरन) हवा की तरह दौड़ते हुए निकल गये। लो, चौथा भी लड़खड़ाने लगा और अंत मे हिमाच्छादित शिला पर लेट गया। यहाँ कहीं तरल जल नहीं दिखाई देता। किन्तु शिलाओं के नीचे से, जहाँ वह आदमी लेटा था, गंभीर घर्र-घर्र की आवाज आती थी।

एक ब्राह्मण इस समय भी राम के साथ था, वही लाल कम्बल, एक दूरबीन, एक हरा चश्मा और एक कुल्हाड़ी लिये हुये। यहाँ हवा बिल्कुल पतली है। साँस लेने में बड़ी कठिनाई होती है। फिर भी आश्चर्य! दो गरुड़ हमारे सिरों के ऊपर से उड़ते हुये निकल गये। अब बहुत पुरानी, अत्यन्त प्राचीन कालीन गहरे काले रंग की बर्फ की एक ढलवा चढ़ाई चढ़नी थी। विकट काम था। साथी ने कुल्हाड़ी से उस रपटने वाली बर्फ में कुछ गड्ढ बनाने चाहे जिससे उनमें पैर जमा कर ऊपर चढ़ा जाय। किन्तु वह पुरातन हिमखंड इतना कड़ा था कि उस बिचारे की कुल्हाड़ी टूट गई। ठीक उसी समय बर्फ के अन्धड़ ने आ घेरा। राम ने उस विचारे दुखी हृदय को सान्त्वना देने की चेष्टा की। भगवान कभी हम लोगों का अनिष्ट नहीं कर सकता, इस हिम वर्षा से हमारा मार्ग निस्सन्देह सुगम हो जायेगा। सचमुच हुआ भी यही। उस भयानक हिमपात से ऊपर

चढ़ना कुछ आसान हो गया। नुकीली पर्वतीय छड़ियों की सहायता से हम लोग उस ढाल के ऊपर चढ़ गये और लो, हमारे सामने साफ चौरस चमचमाती हुई बर्फ का मीलों विशाल लम्बा चौड़ा मैदान प्रस्तुत था। शुभ्र रजत जैसी आभा से जगमग फर्श—चारों ओर से एक दम समतल। हर्ष-परम हर्ष! जाज्वल्यमान क्षीरसागर, चमकदार, परमोत्तम, विचित्र, विचित्र से विचत्र! राम के हर्ष का पारावार न था। उसने अपनी पूरी चाल से दौड़ना शुरू किया, कंधों पर लाल कम्बल डालकर और केनवस के जूते पहनकर ऐसी तेजी से दौड़ा जैसा कभी न दौड़ा होगा।

इस समय राम बिल्कुल अकेला था। एक भी साथी नहीं—आत्मा का हंस भी तो अंत में अकेला ही उड़ता है। लगभग तीन मील तक राम दौड़ता ही चला गया। कभी-कभी टाँगें बर्फ में धँस जातीं और निकलतीं थीं कठिनाई से। लो, अब एक हिमानी ढेर पर लाल कम्बल बिछा दिया और बैठ गया; राम एकदम अकेला, संसार के गुलगपाड़े और झंझटों से एकदम ऊपर—समाज की तृष्णा और ज्वाला से एकदम परे। नीरवता की चरम सीमा, शान्ति का साम्राज्य! शक्ति का अतुल विस्तार। शब्द का नामो-निशान नहीं, है केवल आनन्द घनघोर। धन्य, धन्य, उस गम्भीर एकान्त को सहस्र बार धन्य!

बादलों का घूँघट भी यहाँ पतला पड़ जाता है और उस पतले परदे में होकर सूर्य की किरणें छनकर फर्शपर ऐसे गिरने लगती हैं कि बात की बातमें उस शुभ्र रजत-हिम को प्रदीप्त स्वर्णमें परिणत कर देती हैं। कितना उपयुक्त नामकरण हुआ है इस स्थान का, सुमेरु पर्वत—सोने का पहाड़।

स्वामी रामतीर्थ

अभ्यास

सामान्य प्रश्न—

१—यात्रा में स्वामी राम का भोजन क्या था ? उनके तत्कालीन जीवन यापन की विधि लिखो।

२—मार्ग मे कौन-कौन कठिनाइयाँ आयीं ?

३—'राम' म वह शक्ति कहाँ से आई थी जिसके कारण वे इस यात्रा म समर्थ हो सके ?

शब्दाध्ययन—

१—शब्दार्थ लिखो, जाज्वल्यमान, शुभ्र, परिणत, सान्त्वना।

२—अनुग्रह और आग्रह म क्या अन्तर है ?

व्याकरण—

१—सक्षिप्त वाक्य विश्लेषण करो—

उसने एक ऐसे मार्ग का अनुसरण किया जिस पर नीचे मैदान के किसी निवासी के पैर शायद ही कभी पड़े हों।

रचना—

अर्थ लिखो—कहीं-कहीं ... ...घन कट जाता है।

आदेश

अपनी किसी यात्रा का वर्णन करो।

———

[६]

फूल और काँटा

[यह जगत विचित्र है। एक ही कुल और वातावरण में उत्पन्न होने और पलने के बाद भी बहुधा दो विरोधी शील, स्वभाव और गुण वाले व्यक्तित्व पाये जाते हैं। फूल और काँटा, सज्जन और दुर्जन इसके उदाहरण हैं। अन्योक्ति पद्धति से यही बात इस कविता में कही गयी है।]

हैं जनम लेते जगह में एक ही
एक ही पौधा उन्हें है पालता
रात में उन पर चमकता चाँद भी
एक ही सी चाँदनी भी डालता। १।

मेह उन पर है बरसता एक सा
एक सी उन पर हवायें हैं बही
पर सदा ही यह दिखाता है हमें
ढंग उनके एक से होते नहीं। २।

छेद कर काँटा किसी की उंगलियाँ
फाड़ देता है किसी का वर वसन
प्यार-डूबी तितलियों का पर कतर
भौंर का है बेध देता श्याम तन। ३।

फूल लेकर तितलियों को गोद में
भौंर को अपना अनूठा रस पिला
निज सुगन्धों औ निराले रंग से
है सदा देता कली जी की खिला। ४।

है खटकता एक सब की आँख में
दूसरा है सोहता सुर-शीश पर,

किस तरह कुल की बड़ाई काम दे
जो किसी में हो बड़प्पन की कसर। ५।

—श्री अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

परिचय

खड़ी बोली हिन्दी की कविता के स्वरूप को निर्मित करने, उसे सवाँरने और निखारने वाला म महाकवि हरिऔध का नाम श्री महावीरप्रसाद द्विवेदी और मैथिलीशरण गुप्त के साथ ही लिया जाता है। उनकी प्रतिभा बड़ी विलक्षण और काव्य शक्ति बड़ी ही तीव्र थी। सरल से सरल और कठिन से कठिन कविता लिखकर और उसी तरह अत्यन्त नैतिक और उपदेशपूर्ण परन्तु साथ ही घोर शृंगारिक कविताएँ लिखकर आपने सिद्ध कर दिया कि समर्थ कवि क्या कमाल नहीं दिखला सकता है! आप का अमर काव्य 'प्रिय प्रवास' है जो संस्कृतनिष्ठ भाषा में और संस्कृत के ही छन्दों में लिखा गया है। भाषा को माँजने और जनसाधारण के समझाने के लिए इन्होंने चोखे चौपदे, चुभते चौपदे, पद्य प्रसून आदि ग्रन्थ लिखे जिनमे मुहावरों और लोकोक्तियों की बहार देखने ही योग्य है। आपकी अन्य पुस्तकें हैं, वैदेही-वनवास, रस-कलस आदि। कुछ वर्ष पूर्व आजमगढ़ म ही करीब ८० वर्ष की अवस्था म आपका देहावसान हो गया।

अभ्यास

सामान्य प्रश्न—

१—फूल और काँटे कहाँ उत्पन्न होते हैं और किन परिस्थितियों म उनका पालन पोषण होता है?

२—दोनों के गुणों और स्वभाव म क्या अन्तर है?

३—इस कविता का निष्कर्ष कवि ने क्या दिया है?

शब्दाध्ययन—

१—इस कविता में संस्कृत के तत्सम शब्द बहुत कम है, अधिकतर बोलचाल के शब्द प्रयुक्त हुए हैं; ऐसे शब्दों को ढूँढ़ो।

२—निम्नलिखित मुहावरों का अर्थ बताओ-जी की कली खिलना, आँख में खटकना, कसर होना।

रस अलंकार—

जब कवि कोई बात कहना चाहता है और उसे छिपाकर दूसरों पर घटित करके कहता है तो उसे अन्योक्ति कहते हैं। यहां कवि सज्जन और दुर्जन का वर्णन करने की जगह उनके प्रतीक फूल और कांटोंका वर्णन करता है। अन्योक्ति के अन्य उदाहरण खोजो।

२—इसमें अनुप्रास अलंकार कहाँ कहाँ है ?

रचना—

जिस बोलचाल की भाषा में यह कविता लिखी गयी है, उसी भाषा में 'फूल और काँटे' के विषय में एक निबन्ध लिखो।

आदेश

अपने स्कूल के पुस्तकालय से हरिऔधजी की पुस्तकें लेकर पढ़ो।

---

[१०]

पेन्सिलीन

[भापक इंजिन, टेलीफोन, रेडियो आदि में से कुछ के आवि-ष्कार के सम्बन्ध में तुम ने प्रारम्भिक कक्षाओं में अवश्य पढ़ा होगा। ये आविष्कार मनुष्य जाति के कल्याण के लिए ही होते हैं किन्तु मनुष्य स्वार्थवश इनका उपयोग मनुष्य के विनाश के कार्यों में भी करने लगता है। हवाई जहाज, अणुबम आदि का, जिनसे मानव का सुख सुविधा कई गुना बढ़ सकती है, इसी प्रकार दुरुपयोग किया गया है। किन्तु विज्ञान ने संसार को कुछ ऐसी वस्तुएँ भी दी हैं जिनसे मानव का हित छोड़ अहित की आशंका नहीं है। पेन्सिलीन भी एक ऐसी ही वस्तु है। आज बीमारों और घायलों की रक्षा के लिए जो आविष्कार होंगे, मनुष्य के लिए उन्हीं का महत्व सबसे अधिक होगा। पेन्सिलीन कितनी महत्वपूर्ण वस्तु है, इसका कुछ वर्णन इस लेख में मिलेगा।]

इस युग में जितने भी वैज्ञानिक आविष्कार हुए हैं, मनुष्य जाति के कल्याण की दृष्टि से उनमें से पेन्सिलीन का आविष्कार सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। यों तो चिकित्सा के क्षेत्र में भी एक से एक बढ़कर लाभप्रद दवाओं और प्रक्रियाओं का आवि-ष्कार हुआ है पर पेन्सिलीन आज सारे संसार में बहुत बड़े पैमाने पर व्यवहृत हो रही है और साधारण जनता भी उससे लाभ उठा रही है। युद्ध काल में संसार ने इसके महत्व को अच्छी तरह पहिचाना। जब कि मनुष्य के मारक आविष्कार मनुष्य का संहार करने के काम में आ रहे थे, उस समय पेन्सिलीन का उपयोग हजारों-लाखों व्यक्तियों की प्राण-रक्षा के लिए हो रहा था। युद्धों में मनुष्य जिस संख्या में मरते हैं उससे कहीं

अधिक संख्या में घायल होते हैं। घायलों के घाव आगे चलकर विषैले हो जाते हैं और फिर उन्हें बचाना कठिन हो जाता है। पेन्सिलीन घावों को बड़ी तेजी से भरकर उनके विष को दूर करती है। इसीसे पिछले महायुद्ध के बाद पेन्सिलीन के प्रयोग के फल-स्वरूप घायलों की मृत्यु संख्या पचास प्रतिशत कम हो गयी है।

ये घाव विषैले कैसे हो जाते हैं ? उनके विषैले होने का कारण वे भांति-भांति के कीटाणु हैं जो सम्पूर्ण पृथ्वी पर तथा उसके ऊपर के वातावरण में प्रत्येक स्थान पर व्याप्त हैं। उनमें से अनेक कीटाणु भयंकर रूप से विषैले होते हैं। ये इतने छोटे होते हैं कि बारीक अनुवीक्षण यंत्र से भी ज्यामिति के बिन्दु के समान ही दिखलाई पड़ते हैं। पर विद्युत अनुवीक्षण यंत्र की सहायता से उनका आकार साढ़े दस लाख गुना बड़ा दिखलाई पड़ सकता है। जब किसी को कहीं कोई चोट-खरोंच लग जाती और घाव हो जाता है तो वातावरण में से ये कीटाणु, जिन्हें 'बैक्टेरिया' कहा जाता है, घाव पर पहुँच जाते हैं वहाँ ये अपना खाद्य पाते हैं और बड़ी तेजी से बढ़ने लगते हैं। उनमें यदि कुछ विषैले कीटाणु भी हैं, तो घाव बढ़ने लगता और बाद में विषैला बन जाता है जिससे मनुष्य का बचना कठिन हो जाता है। ऐसी दवा हो सकती है जो इन विषैले कीटाणुओं को समाप्त कर दे परन्तु मनुष्य का जीवन भी साथ ही समाप्त हो जायगा। अतः ऐसी दवा की आवश्यकता थी जो विषैले कीटाणुओं को तो मार डाले पर मनुष्य के शरीर को कोई हानि न पहुंचे। पेन्सिलीन ऐसी ही दवा है।

पेन्सिलीन के आविष्कार की कहानी भी बड़ी विचित्र है। अनेक वैज्ञानिक आविष्कारों के स्वरूप का आभास वैज्ञानिकों को अकस्मात ही हो जाता है। भाप के इंजिन, पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति आदि का आविष्कार ऐसे ही आकस्मिक रूप से हुआ था।

पेन्सिलीन की उत्पत्ति भी ऐसे ही आविष्कारों में से एक है। इसके आविष्कारक एक अंग्रेज डाक्टर अलेक्जेण्डर फ्लेमिंग हैं। ये सेण्टमेरी अस्पताल, लन्दन मे अध्यापक थे। स्ट्रेप्टोकोकाई नाम का एक भयकर विषैला कीडा होता है जो किसी घाव मे पहुचने पर जल्दी ही सारे शरीर को विषयुक्त कर देता है। डाक्टर फ्लेमिंग इसी कीटाणु के सम्बन्ध मे खोज और प्रयोग कर रहे थे। इसी प्रयोग के सिलसिले में आकस्मात उन्हें पेन्सि-लीन का पता चल गया।

सन् १९२८में डॉ० फ्लेमिंग समुद्री घास से निर्मित 'एगर' नामक रसायनिक पदार्थ से स्ट्रेप्टोकोकाइ नामक विषैले कीटाणुको उपजाने का प्रयत्न कर रहे थे। उन्होने 'एगर' को कई तश्तरियो मे ढक कर रख दिया था। वे जब उनमें से एक तश्तरी का निरी-क्षण कर रहे थे कि अचानक कहीं से एक फफूँद (भुइली) का बीज उसमे आकर पड गया। डाक्टर ने उसे नहीं देखा और तश्तरी को फिर ढक कर चले गये। कुछ दिनो बाद उन्होंने उन सभी तश्तरियों का निरीक्षण किया तो उन्हें यह देख कर आश्चर्य हुआ कि उस तश्तरी मे जिसे उन्होंने एक दिन खोल कर देखा था, एक नाले रग की फफूँद उग आयी है। जब उन्होंने उसे अनुवीक्षण यत्र से और भी ध्यान से देखा तो मालूम हुआ कि फफूँद के पास के सभी स्ट्रेप्टोकोकाई नामक कीटाणु मर चुके थे। उन कीटाणुओं के मरने का कारण यह था कि फफूद उगते समय एक पीला तरल पदार्थ छोडती थी जो उन कीटाणुओं के लिए मृत्युकारी था। इस प्रकार १९२९ ई० में पेन्सिलीन का अनायास ही अविष्कार हो गया।

डाक्टर फ्लेमिंग ने पेन्सिलीन का आविष्कार तो किया पर उसके बाद करीब दस वर्षों तक उसके बारे में बराबर प्रयोग होते रहे। प्रश्न यह था कि किस प्रकार इस अद्भुत रसायन को अत्यधिक मात्रामें तैयार किया जाय। फफूद और अन्य साधनो

की कमी ही इस कार्य की सफलता के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा थी। सन् १६२८ में आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के प्रोफेसर डाक्टर फ्लोरे और डाक्टर चेन ने इस विषय में प्रयोग करने का बीड़ा उठाया। अन्य वैज्ञानिकों के प्रयोगों से भी पेन्सिलीन के गुणों का शीघ्रता से पता लगने लगा और यह पर्याप्त मात्रा में बनाई भी जाने लगी। आज संसार में सबसे अधिक मात्रा में अमेरिका में ही पेन्सिलीन तैयार किया जाता है और उसके बाद ग्रेट-ब्रिटेन में।

पेन्सिलीन के आविष्कार के पहले घावों पर अधिकतर बाहर से ही औषधियों का लेप किया जाता था। इससे घाव के बाहरी कीटाणु तो नष्ट हो जाते थे परन्तु शरीर के भीतर के कीटाणु नहीं नष्ट होते थे। इस कमी को पेन्सिलीन के आविष्कार ने दूर कर दिया। पेन्सिलीन की सुई दी जाती है, क्योंकि मुंह से खिलाने पर इस रसायनिक पदार्थ की शक्ति कम हो जाती है और मूत्र के साथ भी इसका काफी अंश बाहर निकल जाता है। सुई से भीतर प्रविष्ट कराने पर यह सीधे रक्त में पहुंच कर भीतर के विषैले कीटाणुओं को नष्ट कर देती और घाव को भर देती है। इससे शरीर की भी कोई हानि नहीं होती है। साथ ही यह रक्त में शरीर को लाभ पहुँचानेवाले श्वेत कीटाणुओं को बढ़ाने में सहायता भी करती है।

पेन्सिलीन से मनुष्य जाति का कितना लाभ हुआ है, यह इसी से स्पष्ट है कि भारतवर्ष जैसे देश में जहाँ अभी तक यह दवा तैयार नहीं होती है, सभी बड़े अस्पतालों में इसका प्रयोग होने लगा है। परन्तु आशा है कि निकट भविष्य में हमारे देश में भी पेन्सिलीन का निर्माण होने लगेगा।

—सम्पादक

अभ्यास

सामान्य प्रश्न—

१—पेन्सिलीन न अविष्कारक कौन हैं ?
२—पेन्सिलीन का प्रविष्कार किस प्रकार हुआ ?
३—यह दवा समार मे सबसे अधिक कहाँ तैयार की जाती है ?
४—इसका प्रयोग डाक्टर लोग किस प्रकार करते हैं ?
५—घाव किस प्रकार सड़ते हैं ?

शब्दाध्ययन—

१—वैज्ञानिक और रासायनिक शब्द विज्ञान और रसायन म इक प्रत्यय लगाने से बने है। इसी तरह निम्नलिखित शब्दा म इक प्रत्यय लगा कर शब्द बताओ—

काल, भूमि, योग, लाक, नाति, इतिहास, भूगोल, दिन, व्यापार, देव, देह, भूत, मानस।

व्याकरण—

१—सन्धि विच्छेद करो और सन्धियों के नाम बताओ —
रसायन, कीटाणु, आविष्कार तथा ऐसे और शब्द।

२—निम्नलिखित वाक्य का विग्रह करो —
वह थाडे ही समय में सारे शरीर को विषयुक्त कर देता है।

रचना—

१—'पेन्सिलीन के आविष्कार की कहानी' शीर्षक एक निबन्ध लिखो।
२—किसी अन्य आविष्कार के बारे में भी यदि जानते हो तो उसे भी लिखो।

आदेश

अपने आसपास के किसी बड़े अस्पताल में जाकर देखो कि डाक्टर पेन्सिलीन का उपयोग किस प्रकार करते हैं।

[११]

दो भाई

[आपस की फूट परिवार, जाति और समाज ही नहीं, सारे देश को चौपट कर देती है। भाई-भाई का वैर परिवार को नष्ट करता, मनुष्य को पशु बना देता, उसे पतन के गढ़े में गिरा देता है। पड़ोसी और पट्टीदार आपस में लड़कर अपना धनजन और समय नष्ट करते हैं। हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई, सम्प्रदाय के नाम पर, राजनीतिक दल जनता के नाम पर आपस में लड़ते और एक दूसरे को नीचा दिखाने का प्रयत्न करते और अन्ततः देश की बरबादी करते हैं। यह सभ्यता और संस्कृति का दिवालियापन है। मनुष्य बनना और आनन्दमय जीवन बिताना है तो उसे आपसी वैर विरोध को प्रेम और सहानुभूति द्वारा समाप्त करना होगा, यही भाव इस कहानी में व्यक्त किया गया है।]

सशंक, वाक्य-निपुण, दृष्टिगोचर, कूटनीति

प्रातः काल के सूर्य की सुनहरी सुहावनी धूप में कलावती दोनों बेटों को जाँघों पर बैठा कर दूध और रोटी खिलाती थी। केदार बड़ा था, माधव छोटा, दोनों मुह में कौर लिए, कई पग उछल कूद कर फिर जाँघों पर आ बैठते और अपनी तोतली बोली में इस प्रार्थना को रट लगाते थे जिसमें किसी पुराने सहृदय कवि ने किसी जाड़े से सताये हुए बालक के हृदयोद्गार को प्रकट किया है :—

दैव दैव घाम करो
सुगवा सलाम करे
तोहरे बलकवा के जड़यत बा

माँ उन्हें पुचकार कर बुलाती और बड़े बड़े कौर खिलाती। उसके हृदय में प्रेम की उमंग थी और नेत्रों में प्रेम की झलक।

दोनों भाई बड़े हुए। साथ-साथ गले में बाहें डाले खेलते थे, केदार की बुद्धि चुस्त थी, माधव का शरीर, दोनों में इतना स्नेह था कि साथ-साथ पाठशाला जाते, साथ साथ खाते और साथ ही साथ रहते थे। दोनों भाइयों का ब्याह हुआ। केदार की वहू चम्पा अमितभाषिणी और चंचला थी। माधव की वहू श्यामा सावली, सलोनी, रूपराशि की खानि थी, बडी ही मृदु भाषिणी, बडी शान्त स्वभावा और सुशीला थी।

केदार चम्पा पर मोहे और माधव श्यामा पर रीझे। पर कलावती का मन किसी से न मिला। वह दोनों से प्रसन्न और अप्रसन्न थी। उसकी शिक्षा-दीक्षा का बहुत अंश इस व्यर्थ के प्रयत्न मे व्यय होता था कि चम्पा अपनी कार्य कुशलता का एक भाग श्यामा के शान्त स्वभाव से बदल ले।

दोनों भाई सन्तानवान हुए। हरा भरा वृक्ष खूब फैला और फलों से लद गया। कुत्सित वृक्ष में केवल एक फल दृष्टिगोचर हुआ, वह भी कुछ पीला सा मुरझाया हुआ। किन्तु दोनों प्रसन्न नहीं थे। माधव को धन-सम्पति की लालसा थी और केदार को सन्तान की अभिलाषा।

भाग्य की इस कूटनीति ने शनै शनै द्वेष का रूप धारण किया जो स्वाभाविक था। श्यामा अपने लडकों को संवारने-सुधारने में,लगी रहती, उसे सिर उठाने को फुरसत नहीं मिलती थी। वेचारी चम्पा को चूल्हे में जलना और चक्की में पिसना पडता था। यह अनीति कभी-कभी कटु शब्दों के रूप में निकल जाती। श्यामा सुनती, कुढती और चुपचाप सह लेती। परन्तु उसकी यह सहनशीलता चम्पा के क्रोध को शान्त करने के वदले और बढाती। यहाँ तक कि प्याला लबालब भर गया। चम्पा और श्यामा समकोण बनानेवाली रेखाओं की भांति अलग हो गयीं। उस दिन एक ही घर मे दो चूल्हे जले, परन्तु भाइयों ने दाने की सूरत न देखी और कलावती सारे दिन रोती रही।

[२].

कई वर्ष बीत गये। दोनों भाई किसी समय एक ही पालथी पर बैठते थे, एक ही थाली में खाते थे और एक ही छाती से दूध पीते थे, उन्हें अब एक घर में, एक गाँव में रहना कठिन हो गया। परन्तु कुल की साख में बट्टा न लगे, इसलिए ईर्ष्या और द्वेष की धधकती हुई आग को राख के नीचे दबाने की व्यर्थ चेष्टा की जाती थी। उन लोगों में अब भ्रातृ-स्नेह न था, केवल भाई के नाम की लाज थी। मां अब भी जीवित थी, पर दोनों बेटों का वैमनस्य देख कर आँसू बहाया करती। हृदय में प्रेम था, पर नेत्रों में अभिमान न था। कुसुम वही था, परन्तु वह छटा न थी।

दोनों भाई जब लड़के थे तब एक को रोते देख दूसरा भी रोने लगता था, तब वह नादान, बेसमझ और भोले थे। आज एक को रोते हुए देख दूसरा हँसता और तालियाँ बजाता। अब वह समझदार और बुद्धिमान हो गये थे।

जब उन्हें अपने पराये की पहचान न थी उस समय यदि कोई छोड़ने के लिए एक को अपने साथ ले जाने की धमकी देता तो दूसरा जमीन पर लोट जाता और उस आदमी का कुर्ता पकड़ लेता था। अब यदि एक भाई को मृत्यु भी धमकाती तो दूसरे के नेत्रों में आँसू न आते। अब उन्हें अपने पराये की पहिचान हो गयी थी।

बेचारे माधव की दशा शोचनीय थी। खर्च अधिक था और आमदनी कम। उस पर कुल मर्यादा का निर्वाह। हृदय चाहे रोये पर होंठ हंसते रहते। हृदय चाहे मलीन हो, पर कपड़े मैले न हों! चार पुत्र थे, चार पुत्रियाँ और आवश्यक वस्तुएं मोतियों के मोल। कुछ पाइयों की जमींदारी कहाँ तक संभालती? लड़कों का ब्याह अपने बस की बात थी, पर लड़कियों का विवाह कैसे टल सकता था। दो पाई जमीन पहली कन्या के विवाह की भेंट हो गई। उस पर भी बराती बिना भात खाये आंगन से उठ गये।

शेष दूसरी कन्या के विवाह में निकल गयी। साल भर बाद तीसरी लड़की का विवाह हुआ, पेड़-पत्ते भी न बचे। हाँ, अबको डाल गहनों-कपड़ों से भरपूर थी। परन्तु दरिद्रता और धरोहर में वही सम्बन्ध है जो कुत्ते और मांस में।

[३]

इस कन्या का अभी गौना न हुआ था कि माधव पर दो सालके बकाया लगान का वारण्ट आ पहुँचा। कन्याके गहने बन्धक रख गये। गला छूटा। चम्पा इसी समय की ताकमें थी। तुरन्त नये नातेदारों को सूचना दी; तुम लोग बेसुध बैठे हो, यहाँ गहनों का सफाया हुआ जाता है। दूसरे दिन एक नाई और दो ब्राह्मण माधवके दरवाजेपर आकर बैठ गये। बेचारेके गलेमें फाँसी पड़ गयी। रुपये कहाँ से आवें, न जमीन- न जायदाद, न बाग न बगीचा। रहा विश्वास सो वह कभी का उठ चुका था। अब यदि कोई सम्पति थी तो केवल वही दो कोठरियाँ जिनमें उसने अपनी सारी आयु बिताई थी; और उनका कोई ग्राहक न था। विलम्बसे नाक कटी जाती थी। विवश होकर केदारके पास आया और आँखोंमें आँसू भर बोला; 'भैया, इस समय मैं बड़े संकटमें हू, मेरी सहायता करो।'

केदार ने उत्तर दिया—मद्धू, आज कल मैं तङ्ग हो रहा हूँ, तुमसे सत्य कहता हू।

चम्पा अधिकारपूर्ण स्वर से बोली—अरे, तो क्या इनके लिए भी तंग हो रहे हैं? अलग भोजन करने से क्या इज्जत अलग हो जायगी?

केदार ने स्त्री को ओर कनखियों से ताक कर कहा—नहीं-नहीं, मेरा यह प्रयोजन नहीं था। हाथ तंग है तो क्या, कोई न कोई प्रबन्ध तो किया ही जायगा।

चम्पा ने माधव से पूछा—पाँच बीस से कुछ ऊपर ही पर गहने रखे थे न?

माधव ने उत्तर दिया—हाँ; व्याज सहित कोई सवासौ रुपये होते हैं।

केदार रमायण पढ़ रहे थे, फिर पढ़ने में लग गये। चम्पाने तत्व की बातचीत शुरू की:—रुपया बहुत है, हमारे पास होता तो कोई बात नहीं थी। परन्तु हमें भी दूसरों से दिलाना पड़ेगा। और महाजन बिना कुछ लिखाये पढ़ाये रुपया देते नहीं।

माधव ने सोचा— यदि मेरे पास कुछ लिखाने पढ़ाने को होता तो क्या और महाजन मर गये थे, तुम्हारे दरवाजे आता क्यों? बोला—लिखने-पढ़ने को मेरे पास है ही क्या? जो कुछ जगह जायदाद है वह यही घर है।

केदार और चम्पा ने एक दूसरे को मर्मभेदी नयनों से देखा और मन ही मन कहा—क्या आज सचमुच जीवन की प्यारी अभिलाषा पूरी यें होंगी? परन्तु हृदय की यह उमंग मुंहतक आते आते गम्भीर रूप धारण कर गयी। चम्पा बड़ी गम्भीरतासे बोली— घरपर तो कोई महाजन कदाचित ही रुपया दे। शहर हो तो कुछ किराया भी आवे, पर गँवई में तो कोई सेंतमें रखने वाला भी नहीं। फिर साझेकी चीज ठहरी।

केदार डरे कि कहीं चम्पा की कठोरता से खेल बिगड़ न जाय। बोले—एक महाजनसे मेरी जान-पहचान है, वह कदाचित कहने सुननेमें आ जाय।

चम्पाने गरदन हिलाकर इस युक्तिकी सराहना की और बोली—पर दो तीन बीससे अधिक मिलना कठिन है।

केदारने जानपर खेलकर कहा—अरे बहुत दबाने से चार बीस होजायँगे और क्या?

अबकी चम्पाने तीव्र दृष्टिसे केदार को देखा और अनमनी सी होकर बोली—महाजन ऐसे अन्धे नहीं होते।

माधव अपने भाई-भावजके इस गुप्त रहस्य को कुछ-कुछ

समझता था। वह चकित था कि इन्हें इतनी बुद्धि कहाँसे मिल गयी। बोला—और रुपये कहाँसे आवेंगे ?

चम्पा चिढ़कर बोली—और रुपयोंके लिए और फिक्र करो। सवासौ रुपये इन दो कोठरियोंके कई जन्ममें कोई न देगा। चार बीस चाहो तो एक महाजनसे दिला दूँ, लिखा-पढ़ी कर लो।

माधव इन रहस्यमयी बातोंसे सशंक होगया। उसे भय हुआ कि यह लोग मेरे साथ कोई गहरी चाल चल रहे हैं। दृढ़ताके साथ अड़कर बोला—और कौनसी फिक्र करूँ ? गहने होते तो कहता लाओ रख दूँ। यहाँ तो कच्चा सूत भी नहीं है। जब बदनाम हुए तो क्या दसके लिए और क्या पचासके लिए, दोनों एकही बात है। यदि घर बेचकर मेरा नाम रह जाय तो यहाँ तक तो स्वीकार है। परन्तु घर भी बेचूँ और उसपर भी मेरी प्रतिष्ठा धूलमें मिले, ऐसा मैं न करूँगा। केवल नाम का ध्यान है, नहीं तो एकबार नहीं कर जाऊँ तो कोई मेरा क्या करेगा ? और सच पूछो तो मुझे अपने नाम की कोई चिन्ता नहीं है। मुझे कौन जानता है ? संसार तो भैया को हँसेगा ?

केदार का मुँह सूख गया। चम्पा भी चकरा गयी। वह बड़ी चतुर और वाक्य-निपुण रमणी थी। उसे माधव जैसे गँवार से ऐसी दृढ़ता की आशा न थी। उसकी ओर आदर से देखकर बोली—लाल्लू, कभी-कभी तुम भी लड़कों की सी बातें करते हो। भला इस झोंपड़ी पर कौन सौ रुपये निकाल कर देगा ? तुम सवा सौ के बदले सौ ही दिलाओ, मैं आज ही अपना हिस्सा बेचती हूं। उतना ही मेरा भी तो है ? घर पर तो तुमको वही चार बीस मिलेंगे। हाँ, और रुपयों का प्रबन्ध हम आप कर देंगे। इज्जत हमारी तुम्हारी एक ही है, वह न जाने पायेगी। वह रुपया अलग खाते में चढ़ा लिया जायेगा।

माधव की वाञ्छायें पूरी हुईं। उसने मैदान मार लिया। सोचने लगा—मुझे तो रुपयों से काम है, चाहे एक नहीं दस

खाते में चढ़ा लो। रहा मकान, वह जीते जी नहीं छोड़ने का। वह प्रसन्न होकर चला। उसके जाने के बाद केदार और चम्पा ने कपट वेश त्याग दिया,और बड़ी देर तक एक दूसरे को इस कड़े सौदे का दोषी सिद्ध करने की चेष्टा करते रहे। अन्त में मन को इस तरह सन्तोष दिया कि भोजन बहुत मधुर नहीं किन्तु भर-कठौता तो है। घर, हाँ, देखेंगे कि श्यामा रानी इस घर में कैसे राज करती हैं ?

केदार के दरवाजे पर दो बैल खड़े हैं। इनमें कितनी संघ-शक्ति, कितनी मित्रता और कितना प्रेम है ? दोनों एक ही जुए में चलते हैं, बस इनमें इतना ही नाता है। किन्तु अभी कुछ दिन हुए जब इनमें से एक चम्पा के मैके मँगनी गया था तो दूसरे ने तीन दिन तक नाद में मुँह नहीं डाला। परन्तु शोक, एक गोद के खेले भाई, एक छाती से दूध पीने वाले आज इतने बेगाने हो रहे हैं कि एक घर में रहना भी नहीं चाहते !

[४]

प्रातः काल था। केदार के द्वार पर मुखिया और नम्बरदार विराजमान थे। मुंशी दातादयाल अभिमान से चारपाई पर बैठे रेहन का मसविदा तैयार करने में लगे थे। बार-बार कलम बनाते और बार बार खत रखते, पर खत की शान न सुधरती थी। केदार का मुखारविन्द विकसित था और चम्पा फूली नहीं समाती थी। माधव कुम्हलाया और म्लान था।

मुखिया ने कहा—भाई ऐसा हित, न भाई ऐसा शत्रु। केदार ने छोटे भाई की लाज रख ली। नम्बरदार ने अनुमोदन किया—भाई हो तो ऐसा हो।

मुख्तार ने कहा—भाई, सपूतों का यही काम है।

दाता दयाल ने पूछा—रेहन लिखानेवाले का नाम ?

बड़े भाई बोले—माधव वल्द शिवदत्त।

"और लिखानेवाले का ?"

"केदार वल्द शिवदत्त।"

माधव ने बड़े भाई की ओर चकित होकर देखा। आँखें डबडबा आयीं। केदार उसकी ओर देख न सका। नम्बरदार, मुखिया और मुख्तार भी विस्मित हुए। क्या केदार खुद ही रुपया दे रहा है? बातचीत तो किसी साहूकार की थी। जब घर ही में रुपया मौजूद है तो इस रेहननामे की आवश्यकता ही क्या था? भाई भाई में इतना अविश्वास? अरे राम! राम! क्या माधव ८०) को भी महँगा है? और यदि दबा ही बैठता, तो क्या रुपये पानी में चले जाते?

सभी की आँखें सैन द्वारा परस्पर बातें करने लगीं, मानो आश्चर्य की अथाह नदी में नौकायें डगमगाने लगीं।

श्यामा दरवाजे की चौखट पर खड़ी थी। वह सदा केदार की प्रतिष्ठा करती थी, परन्तु आज केवल लोकरीति ने उसे अपने जेठ को आड़े हाथों लेने से रोका।

बूढ़ी अम्मा ने सुना तो सूखी नदी उमड़ आयी। उसने एक बार आकाश की ओर देखा और माथा ठोक लिया। तब उसे उस दिन का स्मरण हुआ जब ऐसा ही सुहावना, सुनहरा प्रभात था और दो प्यारे-प्यारे बच्चे उसकी गोद में बैठे हुए उछल कूद कर दूध रोटी खाते थे। उस समय माता के नेत्रों मे कितना अभिमान था, हृदय में कितना उमंग और कितना उत्साह!

परन्तु आज? आह! आज नयनों में लज्जा है और हृदय में शोक सन्ताप। उसने पृथ्वी की ओर देख कर कातर स्वर में कहा—हे नारायण, क्या ऐसे पुत्रों को मेरी ही कोख मे जन्म लेना था?

—श्री प्रेमचन्द

× ×

परिचय

स्वर्गीय प्रेमचन्दजी हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकार माने जाते हैं। उनका जन्म काशी के पास ही एक गांव के एक गरीब परिवार में हुआ

था और उनका शिक्षा-काल अत्यन्त कठिनाइयों में बीता था। इसी कारण अपने उपन्यासों और कहानियों में उन्होंने ग्रामीण जीवन और किसान-मजदूरों की दयनीय स्थिति का सच्चा चित्र उपस्थित किया है। देश की राजनीतिक गतिविधि और समाज के विभिन्न वर्गों के लोगों का मानोविज्ञान चित्रित करने में भी आपने अत्यधिक सफलता प्राप्त की है। आप ने कई सौ कहानियां, दर्जनों उपन्यास, नाटक और निबन्ध लिखे हैं। रंगभूमि, कर्मभूमि, गबन, सेवासदन, कायाकल्प, गोदान आदि इनके सर्वश्रेष्ठ उपन्यास हैं। आपने हंस नामका एक मासिक पत्र भी निकाला था जो अब तक चल रहा है। साधारण जनता की बोलचाल की भाषा लिखने में आप सिद्धहस्त थे।

अभ्यास

सामान्य प्रश्न—

१—दोनों भाई केदार और माधव में वैमनस्य क्यों उत्पन्न हो गया?
२—केदार ने माधव के साथ क्या चाल चली और क्यों?
३—भाई-भाई का प्रेम कैसा होना चाहिये? क्या स्त्रियों के कारण वह प्रेम बन्धन टूट जाता है? कहानी के आधार पर बताओ।
४—इस कहानी से क्या निष्कर्ष निकलता है।

शब्दाध्ययन—

१—इस कहानी की भाषा उर्दू-हिन्दी के मेल से बनी बोलचाल की भाषा है या संस्कृत शब्दों से भरी हुई? इसमें उर्दू और संस्कृत के शब्द छांटो।
२—मुहावरेदार और मँजी हुई भाषा का मतलब यह है कि उसमें बोलचाल के मुहावरों का व्यवहार हो, वाक्य छोटे-छोटे और सुगठित हों और उनका अर्थ समझने में उलझन न हो। इस दृष्टि से इस कहानी की जाँच करो।
३—इन मुहावरों का अर्थ बताओ—बट्टा लगना, भेंट हो जाना, नदी उमड़ना, नाक कटाना, हाथ तंग होना, लिखाना-पढ़ाना मैदान मारना।

व्याकरण—

१—इस वाक्य के प्रत्येक शब्द की पदव्याख्या करो—माधव की वाञ्छायें पूरी हुईं।

२—समास बताओ—वाक्य निपुण, बाग-बगीचा, सब शक्ति

रचना—

१—अर्थ बताओ (क) चम्पा और श्यामा समकोण बनाने वाली—दिन रोती रही।

(ख) जब उन्हें आपने ···पहचान हो गयी थी।

२—वाक्यों में प्रयोग करो—मीठा और भर-कठौता, भाई ऐसा हित न भाई ऐसा शत्रु।

आदेश

प्रेमचन्द की और भी रचनायें पढ़ कर उनकी भाषा और लेखन-शैली के बारे में एक टिप्पणी लिखो।

---

[१२]

बाल-कृष्ण

[हमारे देश के भक्त कवियों ने भगवान राम और कृष्ण के बाल-रूप का बड़ा ही विशद और मार्मिक वर्णन किया है। ये भक्त कवि भगवान के सगुण-रूप का ध्यान करते थे। अवतार लेकर भगवान ने जो बाल-लीलायें की, उन्होंने उनको उसी तन्मयता से अपनी कविता में व्यक्त किया है जिस तन्मयता को हम बालक के प्रति उसके माता-पिता में पाते हैं। भक्त शिरोमणि महाकवि सूरदास ने तो कृष्ण के बाल-रूप के वर्णन में इतनी सफलता प्राप्त की है जितनी और किसी ने नहीं। यह बात उनकी तन्मयता का परिचय देती है। यहाँ उनके बाल-कृष्ण के चरित्र-वर्णन से कुछ उत्कृष्ट पद दिये जाते हैं।]

मल्हावैं, अवगाहत, लवनी, दूरी, बेनी, आँछन, घिर्‌यां, ।

[१]

जसोदा हरि पालने झुलावैं।
हलरावैं दुलराइ मल्हावैं जोइ सोई कछु गावैं।
मेरे लाल को आउ निदरिया काहे न आनि सुवावै।
तू काहे न वेगि सी आवै तोकों कान्ह बुलावै।
कबहुं पलक हरि मूँदि लेत हैं कबहुं अधर फरकावैं।
सोवत जानि मौन ह्वै है रही कर कर सैन बतावैं।
इहि अन्तर अकुलाई उठे हरि जसुमति मधुरे गावैं।
जो सुख "सूर" अमर मुनि दुर्लभ सो नन्दभामिनि पावैं।

[२]

हरि अपने आगे कछु गावत।
तनक तनक चरनन सों नाचत, मन ही मनहि रिझावत।

बाँह उचाइ काजरी-धौरी गैयन टेरि बुलावत।
कबहुँक बाबा नन्द बुलावत, कबहुँक घर में आवत।
माखन तनक आपने कर ले तनक बदन में नावत।
कबहुँ चितै प्रतिबिम्ब खंभ में, लवनी लिए खवावत।
दुरि देखति जसुमति यह लीला, हरख अनंद बढ़ावत।
सूर, स्याम के बाल-चरित ये नित देखत मन भावत।

[३]

मैया कबहि बढ़ेगी चोटी।
किती बार मोहिं दूध पियत भइ यह अजहूँ है छोटी।
तू जो कहति बल की बेनी ज्यों ह्वै है लाँबी[१] मोटी।
काढ़त गुहत न्हवावत ओछत नागिन सो भ्वैं लोटी।
काँचो दूध पियावत पचि पचि देत न माखन रोटी।
"सूर" स्याम चिरजीवो दोउ मैया हरि हलधर की जोटी।

[४]

मैया मेरी मैं नहि माखन खायो।
भोर भयो गैयन के पाछे मधुवन मोहिं पठायो
चार पहर बंसीबट भटक्यो साँझ परे घर आयो
मैं बालक बँहियन को छोटो छीको केहि बिध पायो।
ग्वाल बाल सब बैर परे हैं बरबस मुख लपटायो।
तू जननी मन की अति भोरी इनके कहे पतियायो।
जिय तेरे कछु भेद उपज है जान परायो जायो।
यह ले अपनी लकुट कमरिया बहुतहि नाच नचायो।
"सूरदास" तब बिहँसि जसोदा है उर कंठ लगायो।

—महाकवि सूरदास

परिचय

ये पद महाकवि सूरदासजी के सूरसागर से लिये गये हैं। सूरदासजी का जन्म सं० १५४० के आसपास मथुरा के निकट हुआ था। ये महाप्रभु वल्लभाचार्य के शिष्य थे और उन्हीं के कहने से उन्होंने कृष्ण-चरित्र विषयक पद लिखे जिनकी संख्या सवा लाख बतायी जाती

है। उनकी मृत्यु पारसौली गांव में सं० १६२० के आसपास बतायी जाती है। सूरदासजी ने श्री कृष्णचरित्र की लोक-कल्याण से सम्बन्ध रखने वाली घटनाओं का उतना चित्रण नहीं किया जितना मानव हृदय को प्रसन्न करने वाले रूप—बाल-लीला, रासलीला, प्रेम की दशाओं आदि का। पर सीमित क्षेत्र में ही उन्होंने जितना सूक्ष्म विवेचन और मार्मिक अनुभूतियों का चित्रण किया है वह संसार के साहित्य मे अन्यत्र दुर्लभ है। हिन्दी में तुलसी को छोड़ अन्य कोई कवि इनकी टक्कर का नहीं हुआ।

अभ्यास

सामान्य प्रश्न—

१—बालक कृष्ण को सूरदासजी ने अलौकिक अवतारी बालक के रूप में दिखलाया है या स्वाभाविक साधारण बालक के रूप में? घटनाओं का उल्लेख करके उत्तर स्पष्ट करो।

२—यशोदा ने जब कृष्ण पर माखन चुराने का आरोप लगाया तो कृष्ण ने उसका उत्तर किस प्रकार दिया? उनका उत्तर सही था या बहाना मात्र?

शब्दाध्ययन—

१—हिन्दी की किस बोली मे सूरदासजी ने कविता लिखी है और वह भाषा कहां बोली जाती है।

२—इन शब्दों के पर्याय खड़ी बोली के शब्द लिखो—निदरिया, बुलावै, रवि, निरखि, लवनी।

३—इन शब्दों का तत्सम रूप लिखो—पुनि, बेनी, पूत, जतन, मैया।

रस-अलंकार—

१—निम्न पदों में कौन अलंकार है—नागिन सी ह्वै मोटी। किलकत कान्ह। चित चाहत।

२—इन पदों में कौन-सा रस है?

रचना—

१—सूरदास के पदों के आधार पर कृष्ण के बाल-चरित का वर्णन करो।

आदेश

इन पदों को कण्ठस्थ करो और स्वर-ताल से गाने का प्रयत्न करो।

(१३)

सहकारी खेती

[भारतवर्ष की अवस्था अन्य उन्नत देशों की अपेक्षा अभी बहुत खराब है जिसके मूल में यहाँ की ग्रामीण दुर्दशा है। भारत अन्य सभी क्षेत्रों में चाहे जितना सुधार करे लेकिन उसकी आर्थिक अवस्था तब तक नहीं सुधर सकती जब तक खेतों की उत्पादन शक्ति नहीं बढ़ती और कृषकों की अवस्था नहीं सुधरती। इस वैज्ञानिक युग में, जब कि उत्पादन, शक्ति बढ़ाने के ट्रैक्टर आदि अनेक साधन और अनेक तरीके मौजूद हैं, हम अपनी पुरानी डफली और राग लिये घूम रहे हैं। एक आदमी कई कठिनाईयों को दूर करने में समर्थ नहीं होता परन्तु उन्हीं का जब समूह बन जाता है तब वही कठिनाईयाँ सरलता से दूर हो जाती हैं। इस पाठ में भी सामूहिकता और मेल पर ही अधिक जोर दिया गया है]

विकास, मूलतः, यातायात, विवादग्रस्त

भारतवर्ष गांवों का देश है क्योंकि अस्सी प्रतिशत जनसंख्या गांवों में रहती है जिसका मुख्य उद्यम खेती करना है। किसी देश की आर्थिक अवस्था और उसकी आय गांवों पर ही निर्भर है। फिर गांवों का महत्व भारतवर्ष ऐसे देशों के लिए तो और भी अधिक है क्योंकि औद्योगिक विकास अभी यहाँ यथेष्ट रूप से नहीं हो सका है। कृषि की अवस्था अत्यन्त ही दयनीय है। इस अवस्था के बिगड़ने के मूल में विदेशी सरकार की गांवों के प्रति उपेक्षा का भाव ही है। विदेशी सरकार ने देश के अन्दर कुछ नगरों को शोषण-केन्द्र बनाकर गांवों की सारी सम्पत्ति का शोषण किया और यही परिपाटी अब भी निभाई जा रही है। गांवों की उत्पादन-शक्ति क्षीण होती जाती है। गांवों का शोषण कई प्रकार

से हो रहा है। इसकी भीषणता को राष्ट्रपिता पूज्य गांधीजी ने सबसे पहले समझा। भारतवर्ष के ग्रामों की आर्थिक दुर्दशा का कारण मूलतः यहाँ के दो मुख्य उद्यम कृषि और ग्रामीण उद्योग-धन्धों की दयनीय अवस्था है। इन्हीं दोनों उद्यमों का यदि पुनः संगठन कर दिया जाय तो गांवों की दरिद्रता और बेकारी दोनों दूर हो जाय, साथ ही साथ सारे राष्ट्र की आर्थिक शक्ति भी प्रबल हो उठे। भारतीय कृषि अनेक विकट समस्याओं से पीड़ित है। जमींदारी, भूमि के छोटे छोटे छिन्न-भिन्न टुकड़ों में बँटना, सिंचाई के साधनों की कमी, अच्छी खाद, अच्छे बीज और सुधरे हुए औजारों की कमी, जानवरों की दुर्दशा, और अस्त-व्यस्त फसलों के अनेक रोगों से आज भारतीय कृषि पीड़ित है। गांवों के निवासियों के जीवन को अधिक स्वस्थ और सभ्य बनाने का एक मात्र उपाय कृषि का सुधार है जिससे गांवों की आर्थिक अवस्था भी ठीक हो जाय और उपर्युक्त सब बुराइयाँ भी दूर हो जांय। इस समय जो साधन एक अच्छी प्रगति से इन सभी समस्याओं को सुलझा सकता है, वह है गांवों का सामूहिक जीवन। इस सामूहिक जीवन से तात्पर्य यह है कि उनके सभी कार्य, विशेष कर आर्थिक प्रश्न, सामूहिक रूप से हल किये जांय।

इस सामूहिक जीवन और आर्थिक प्रयत्न के लिए मुख्यतः दो प्रकार के मार्ग हैं। प्रथम—सामूहिक खेती, द्वितीय—सहकारी खेती। भारतवर्ष की वर्तमान अवस्था में किस प्रकार की खेती अधिक लाभप्रद होगी यह विवादग्रस्त प्रश्न है। सामूहिक खेती की प्रथा में भूमि पर किसी व्यक्ति विशेष का अधिकार नहीं होता। भूमि पर समाज का अधिकार होता है और समाज का प्रत्येक प्राणी बराबर समझा जाता है। सब लोग मिल कर काम करते हैं। ये सभी लोग मिल कर एक प्रबन्ध समिति बनाते हैं जिसका कार्य सदस्यों में काम बांटना, उनमें आय का वितरण करना और बचत का प्रबन्ध आदि होता है। चूँकि प्रत्येक सदस्य

के कार्य करने की क्षमता भिन्न-भिन्न होती है अतएव कार्य के परिणाम और कार्य के प्रकार के भिन्न-भिन्न होने के कारण, भिन्न-भिन्न आय सदस्यों को प्राप्त होती है। रूस में सामूहिक खेती के अनेक स्वरूप हैं। उनमें से अधिकांश में कुछ एकता पाई जाती है, जैसे सदस्य अपनी सब भूमि को बिना किसी शर्त के समूह को अर्पित कर देते हैं। भूमि तथा अन्य सम्पत्तियों पर सामूहिक अधिकार होता है। सब सदस्य मिल कर कार्य करते हैं परन्तु उनकी आय भिन्न-भिन्न होती है और बहुधा प्रत्येक सदस्य अपने मकान में अपने परिवार के साथ भोजन इत्यादि करता है। हर एक सदस्य ३ एकड़ तक भूमि अपने घर के आस पास रखने का अधिकारी होता है। इसमें वह बागवानी या चिड़िया पालना या अन्य छोटे-मोटे अपने मनचाहे कामों को करता है। प्रत्येक कार्य करने के लिए आदमियों के कई झुण्ड होते हैं और उन झुण्डों का एक निरीक्षक होता है। सबको उनके कार्य के अनुसार पारिश्रमिक दिया जाता है। फलस्वरूप हर सदस्य अपनी कार्य-क्षमता बढ़ाने की कोशिश करता है। बड़े-बड़े खेतों के टुकड़े होते हैं और ये टुकड़े भिन्न-भिन्न क्षेत्रों तक भिन्न-भिन्न पैमाना के होते हैं। इन क्षेत्रों में ट्रैक्टरों तथा अन्य मशीनों द्वारा खेती होती है। इस प्रकार से सफेद रूस में छः सौ एकड़ से कम के खेत, यूक्रेन में १८०० एकड़ से अधिक तथा मध्य और निचले वोल्गा में इससे भी दुगुने या तीगुने क्षेत्र हैं। मशीन के द्वारा इन बड़े क्षेत्रों में खेती करके रूस के कृषकों की आय में बहुत वृद्धि हुई है।

इस प्रकार की सफलता से प्रोत्साहित होकर भारतवर्ष के अन्दर भी इस प्रकार की सामूहिक खेती के विचारों का उत्पन्न होना स्वाभाविक ही है। परन्तु भारतीय अवस्था रूस की अवस्था से कुछ ऐसी भिन्न है कि इस प्रकार की खेती यहाँ उतनी उपयुक्त नहीं प्रतीत होती। रूस को इस सफलता के लिये बहुत विकट परिस्थितियों का सामना करना पड़ा और अमानवीय व्यवहार

भी किये गये। दूसरी बात यह है कि सामूहिक खेती में भूमि पर व्यक्ति विशेष का अधिकार नहीं रह जाता किन्तु भारतवर्ष में तो यह प्राचीन पद्धति है कि हम भूमि पर व्यक्ति विशेष का अधिकार सम्मानित करते हैं। अतः भारतवर्ष के लिए किसी ऐसे सामूहिक प्रयत्न का होना आवश्यक है जिससे भारतवर्ष की उपज में वृद्धि हो और उसके साथ ही साथ व्यक्तियों को भूमि-अधिकार की भावना भी सुरक्षित रहे। इन दोनों का समन्वय सहकारी कृषि द्वारा बड़ी सुगमता से किया जा सकता है।

सहकारी कृषि के कई स्वरूप होते हैं—

प्रथम—सहकारी सुधार कृषि समितियाँ जिनमें व्यक्तिगत अधिकार भूमि पर बना रहता है। कृषक अपने खेतों में अलग अलग जोतता बोता है। परन्तु खेती के अन्य कार्य सामूहिक ढंग पर होते हैं जैसे मशीन का प्रयोग, कृषि की वस्तुओं का क्रय-विक्रय करना, खेतों की रखवाली करना इत्यादि। ये कार्य सहकारी योजना द्वारा होते हैं। इसमें सम्मिलित होने के लिए कोई कृषक बाध्य नहीं है। यह सहकारिता की प्रारम्भिक अवस्था है जहाँ खेत के जोतने बोने के सिवाय अन्य कार्यों में सहकारिता से कार्य लिया जाता है।

दूसरा—सहकारी काश्तकार कृषि समितियाँ—जिनमें सामूहिक स्वामित्व और व्यक्तिगत स्वतंत्र कार्यप्रणाली का समन्वय होता है। इसमें भूमि पर समिति का अधिकार होता है परन्तु जमीन कई भागों में काश्तकारों को, जो समिति के सदस्य होते हैं, जोतने बोने के लिए दी जाती है। प्रत्येक काश्तकार अपनी भूमि के लिए एक निश्चित लगान इस समिति को देता है। यह समितियाँ कृषि सम्बन्धी आवश्यकताओं, जैसे अच्छे बीज, खाद, कर्ज आदि का प्रबन्ध करती हैं और उन खेतिहरों द्वारा उत्पादित सामानों को बेचने का भी प्रबन्ध करती है। परन्तु सदस्य इसका लाभ उठाने के लिए बाध्य नहीं होता। यह स्वतन्त्र रूप से भी कार्य कर

सकता है। इसमें खेतिहर स्वयं भूमि का स्वामी होता है और जमींदारों के अत्याचारों से मुक्त होता है। परन्तु यह प्रथा वहीं पर उपयुक्त है जहाँ नई भूमि में खेती की जाय। भारतवर्ष में उन स्थानों पर जहाँ शरणार्थियों या अन्य लोगों को बसाकर नवीन स्थान में खेती करनी है वहाँ इस प्रकार की समितियाँ लाभप्रद होगी।

तीसरे प्रकार की वे समितियाँ हैं जिन्हें सहकारी सामूहिक कृषि समितियाँ कहा जा सकता है। यहाँ पर भूमि पर स्वामित्व और कार्य-प्रणाली दोनों सामूहिक होती हैं। इसमें समितियाँ अपने सदस्यों के साथ अपनी खेती की योजना के अनुसार श्रमिक की भांति व्यवहार करती है। इस प्रकार की कृषि में व्यक्ति विशेष का स्वामित्व भूमि पर नहीं रह जाता और न तो अपनी स्वतंत्र प्रणाली से वह खेती ही कर सकता है। वर्ष के अन्त मे जो लाभ प्राप्त होता है वह इन सदस्यों में उनके श्रम के अनुसार विभाजित कर दिया जाता है। इस प्राकर की कृषि और रूस मे प्रचलित सामूहिक कृषि में अन्तर यही होता है कि यह प्रजातांत्रिक व्यवस्था है जिसका प्रवन्ध इन समितियों के सदस्य स्वयं करते हैं और रूस में यह प्रवन्ध अधिकांश में राज्य की ओर से होता है।

चौथे प्रकार की सहकारी सम्मिलित कृषि समितियां हैं जिनमें व्यक्तियों के स्वामित्व की भावना की रक्षा होती है। स्वामित्व व्यक्तिविशेष का होता है परन्तु खेत के जोतने बोने का काम सामूहिक होता है। प्रबन्ध-समिति के आदेशानुसार सब सदस्य सम्मिलित भूमि पर काम करते हैं। कार्य सामूहिक होता है परन्तु प्रत्येक श्रमिक अपने दैनिक परिश्रम का पुरस्कार पाता है। पूर्ण उपज का विक्रय सामूहिक ढंग से होता है। बीज का मूल्य, श्रमिकों के पुरस्कार का व्यय और भूमि के प्रयोग करने का लगान आदि उत्पादन-व्यय घटा देने के बाद जो लाभ शेष रह जाता है

उसका वितरण सदस्यों द्वारा प्राप्त पुरस्कार के अनुपात में कर दिया जाता है। इस समिति का मुख्य कार्य यही होता है कि वह एक सम्मिलित फसलों की योजना तैयार करती है और सारी कृषि-प्रणाली को सामूहिक ढंग से संगठित करती है। इस समिति से बड़े-बड़े क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर कृषि करने का जो लाभ होता है वह स्वामित्व को सुरक्षित रखते हुए सम्भव है। इस प्रकार की समितियाँ भारतवर्ष की वर्तमान अवस्था में बहुत ही उपयुक्त हैं। खेतों के बड़े बड़े क्षेत्र (फार्म) बन जायंगे, हर एक भूमि के स्वामी को यह अधिकार होगा कि वह अपनी भूमि से आमदनी प्राप्त कर सके और साथ ही साथ अपने परिश्रम का भी पुरस्कार प्राप्त करे। उसे दो प्रकार की आय प्राप्त होगी; एक उसके कार्य की आय, दूसरे भूमि के स्वामित्व का आय। जो काम करने में असमर्थ होंगे उन्हें केवल स्वामित्व की ही आय प्राप्त होगी।

इस प्रकार को समितियों द्वारा भारतवर्ष की वर्तमान ग्रामीण आर्थिक प्रणाली में नया परिवर्तन होगा और उत्पादन शक्ति भी बढ़ेगी। खेतिहर मजदूरों को अपने घर के स्वस्थ वातावरण में कार्य मिलेगा जिससे भारतवर्ष की बढ़ती हुई बेकारी और दरिद्रता समाप्त हो जायगी। भूमि सम्बन्धी तथा अन्य प्रकार की ग्रामीण समस्यायें आसानी से सुलझ जायगी। इस प्रकार की कृषि में प्रजा और राज्य दोनों का उचित सहयोग प्राप्त होगा। कृषि की सब कठिनाइयां हल हो जायेंगी और भारत-वसुन्धरा अपनी उर्वराशक्ति से कई गुना अधिक जनसंख्या का पालन-पोषण कर सकेगी। तब यह राष्ट्र उद्योग और कृषि दोनों क्षेत्रों में अतुल सम्पत्ति उत्पादित कर सकेगा।

अभ्यास

सामान्य प्रश्न—

१—सहकारी कृषि के कितने स्वरूप हैं और उनमें से कौन सा भारत के लिए अधिक उपयुक्त है?

२—रूस में कृषि की कौन सी व्यवस्था है और वह व्यवस्था भारत के लिए उतनी उपयुक्त क्यों नहीं है?

३—भारतीय ग्रामों की दुर्दशा के क्या कारण हैं और उन्हें कैसे दूर किया जा सकता है?

४—सामूहिक खेती और सहकारी खेती में क्या अन्तर है?

शब्दाध्ययन—

अर्थ बताओ—संतुलित, क्षमता, वान्छित।

रचना—गांवों की उन्नति के सम्बन्ध में एक लेख लिखो।

आदेश

अपने गांव की खेती की अवस्था का अध्ययन करो और सहकारी खेती का प्रचार करो।

———

[१४]

विजयादशमी का सन्देश

[साधारणतः लोग विजयादशमी को रावण पर राम की विजय का पर्व समझते हैं। परन्तु विद्वान लेखक ने यहाँ विजयादशमी के ऐतिहासिक विकासक्रम का अध्ययन प्रस्तुत किया है। सचमुच विजयादशमी में कई पर्व मिले हुए हैं, इनमें पाँच मुख्य हैं—कृषि-आरम्भ, सीमोल्लंघन, रघु का कौत्समुनि को दान, राम विजय, भगवान बुद्ध का जन्म दिन। प्रस्तुत लेख में लेखक ने बड़े अच्छे ढंग से विजयादशमी संबंधी रीति-रिवाजों की व्याख्या की है और एक नया सदेश दिया है।]

मूर्तिमन्त, स्थिरतामूलक, परिचर्या, समुद्रवलयांकित, तपस्तेज

आगरे में मुगलकाल की जो इमारतें हैं, उनमें एक विशेषता यह है कि उनके निचले खंड लाल पत्थर के हैं और ऊपर वाले सफेद पत्थर के। लाल पत्थर का काम जहाँगीर के समय का है और सफेद पत्थर का शाहजहाँ के समय का। हर इमारत में इस तरह कालक्रम का इतिहास वर्णभेद से मूर्तिमन्त दिखलायी देता है। किसी भी पुराने बड़े शहरमें पुरानी बस्ती और नई बस्ती एक दूसरे से सटी हुई नजर आती हैं, या बस्तियों की तहों पर तहें जमी हुई दिखाई देती हैं। भाषा की कहावतों में भी भिन्न-भिन्न समय का इतिहास समाया हुआ है। नदी के किनारे हर साल जो कीचड़ की तहों पर तहें जम जाती हैं, अन्त में उन्हीं से धरती की भट्ठी में एक पत्थर बन जाता है।

दशहरे का त्योहर भी एक ही त्योहार होते हुये, भिन्न काल के भिन्न-भिन्न स्तरों का बना हुआ है। दशहरे के त्योहार के साथ असंख्य युगों के असंख्य प्रकार के आये पुरुषों की विजय जुड़ी हुई है।

मनुष्य-मनुष्य का संघर्ष जितना महत्त्व का है, उतना ही या

उससे भी अधिक महत्त्व का संघर्ष मनुष्य और प्रकृति के बीच का है। मानव को प्रकृति पर जो सबसे बड़ी विजय मिली है, वह है खेती। जिस दिन जुती हुई जमीन में अनाज बो कर, कृत्रिम जल का सिंचन करके उसमें से अपनी आजीविका तथा भविष्य के संग्रह के लिए पर्याप्त अनाज मनुष्य प्राप्त कर सका, वह दिन मनुष्य के लिए सबसे बड़ी विजय का था क्योंकि उसके बाद ही स्थिरतामूलक संस्कृति का जन्म हुआ। उस दिनकी स्मृति को हमेशां ताजा रखना कृषिपरायण आर्य लोगोंका प्रथम कर्तव्य था।

बीसवीं सदी भौतिक तथा यांत्रिक आविष्कारोंकी सदी समझी जाती है और यह उचित भी है। लेकिन मानव जाति के अस्तित्व और संस्कृति के लिए जो महान् आविष्कार कारणरूप हुए हैं, वे सब आदियुग में भी हुए हैं। जमीन को जोतने की कला, सूत कातने की कला, आग जलाने की कला और मिट्टी से पका घड़ा बनाने की कला, ये चार कलायें मानो मानवी संस्कृति के आधारस्तंभ हैं। इन चारों कलाओं का उपयोग करके विजयादशमी के दिन हमने कृषिमहोत्सव का निर्माण किया है।

विजयादशमी के त्योहारमें चातुर्वर्ण्य एकत्र हुआ दीखता है। ब्राह्मणों के सरस्वती-पूजन तथा विद्यारंभ, क्षत्रियों के शस्त्रपूजन, अश्व-पूजन तथा सीमाल्लंघन और वैश्यों की खेती, ये तीनों बातें इस त्योहार में एकत्रित होती हैं। और जहाँ इतनी बड़ी प्रवृत्ति चलती हो, वहाँ शूद्रों की परिचर्या तो समाविष्ट है ही। जब देहाती लोग नवरात्र के अनाज की सोने जैसी पीली-पीली कोंपलें तोड़कर अपनी पगड़ियों में खोंसते हैं और बढ़िया पोशाक पहनकर गाते बजाते सीमोल्लंघन करने जाते हैं तो ऐसा दृश्य आँखों के सामने आ खड़ा होता है मानो सारे देश का पौरुष अपना पराक्रम दिखलाने के लिए बाहर निकल पड़ा हो।

दशहरे का उत्सव जिस प्रकार कृषि-प्रधान है, उसी तरह यह क्षात्र-महोत्सव भी है। जिन दिनों भाड़े के सिपाहियों को मुगे

की तरह लड़ाने का तरीका प्रचलित नहीं था, उन दिनों क्षात्र तेज तथा राज-तेज किसानों में ही परवरिश पाते थे। किसान यानी क्षेत्रपति-क्षत्रिय ! जो साल भर भूमिमाता की सेवा करता हो वही मौका आने पर उसकी रक्षा के लिए निकल पड़ेगा। नदियों, नालों, टेकरियों और पहाड़ों के साथ जिसका रात-दिन सम्बन्ध रहता है घोड़ा, बैल जैसे जानवरों को जो अनुशासन सिखा सकता है, और सारे समाज को खाना खिलाता है, उसमें सेनापति और राजत्व के सब गुण आ जायँ तो आश्चर्यकी क्या बात है ? राजा ही किसान और किसान ही राजा है।

ऐसी हालत में कृषिका त्योहार क्षात्र त्योहार बन गया। इसमें पूरी तरह ऐतिहासिक औचित्य है। क्षत्रियोंका प्रधान कर्तव्य तो स्वदेश-रक्षा ही है। परन्तु बहुत बार शत्रु के स्वदेश में घुसकर देश के बरबाद करने से पहले ही उसके दुष्ट हेतु को पहचान कर स्वयं खुद शत्रुके मुल्क में लड़ाई ले जाना होशियारी की और वीरोचित बात मानी जाती है।

थोड़ा सा सोचने पर मालूम होगा कि इस सीमोल्लंघन के पीछे साम्राज्यवादी वृत्ति है। अपनी सरहद लाँघ कर दूसरे देश पर अधिकार जमाना और वहाँ से धन धान्य लूट लाना, इसमें आत्म रक्षा की अपेक्षा महत्वाकांक्षा का ही अंश अधिक है। इस तरह लूट कर लाया सोना अमर पराक्रमा पुरुष अपने ही पास रखे तो वहाँ प्रभुत्व और धनिकत्व एकत्र आ जाते हैं, अतः वहाँ शैतान को अलग न्योता देने की जरूरत नहीं रहती। इसलिये दशहरे के दिन लूट कर लाये हुये सोने को सब रिश्तेदारों में वितरित करना उस दिन की एक महत्व की धार्मिक विधि नियत की गई है।

सुवर्ण-वितरण की इस प्रथा का संबंध रघुवंश के राजा रघु के साथ जोड़ा गया है।

रघु राजा ने विश्वजित् यज्ञ किया। समुद्रवलयांकित पृथ्वी को जीतने के बाद सर्वस्व दान कर डालना विश्वजित यज्ञ कहलाता

है। जब रघु राजा ने इस तरह का विश्वजित् यज्ञ पूरा किया, तब उसके पास वरतन्तु ऋषि का विद्वान और तेजस्वी शिष्य कौत्स जा पहुचा। कौत्स ने गुरु से चौदहो विद्यायें ग्रहण की थीं, उसकी दक्षिणा के तौर पर चौदह करोड सुवर्ण मुद्रायें गुरु को प्रदान करने की उसकी इच्छा थी। लेकिन सर्वस्व दान करने के बाद बचे हुये मिट्टी के बर्तनों से ही राजा को आतिथ्य करते देख कौत्स ने राजा से कुछ भी न माँगने का निश्चय किया। राजा को आशीर्वाद देकर वह जाने लगा। रघु ने बडे आग्रह के साथ उसे रोक रखा और दूसरे दिन स्वर्ग पर धावा बोल कर इन्द्र और कुबेर के पास से धन लाने का प्रबन्ध किया। रघु राजा चक्रवर्ती था। अत इन्द्र और कुबेर भी उसके माण्डलिक थे। ब्राह्मण को दान देने के लिये उनसे कर लेने में संकोच किस बात का था? रघुराजा की चढाई की बात सुनकर देवता लोग डर गये। उन्होंने शमी के एक पेड़ पर सुवर्ण मुद्राओं की वृष्टि की। रघु राज ने सुबह उठ कर देखा, जितना चाहिये उतना सुवर्ण आ गया था। उसने कौत्स को वह ढेर दे दिया। कौत्स चौदह करोड से ज्यादा मुद्रा लेता न था और राजा दान में दिया हुआ धन वापस लेने को तैयार न था। आखिर उसने वह धन नगरवासियों को लुटा दिये। वह दिन आश्विन शुक्ल दशमी का था। इसीलिये आज भी दशहरे के दिन शमी का पूजन करके लोग उसके पत्ते को सोना समझकर लूटते हैं और एक दूसरे को देते हैं। कुछ लोग तो शमी के नीचे की मिट्टी को भी सुवर्ण समझ कर ले जाते हैं।

शमी का पूजन प्राचीन है। ऐसा माना जाता है कि शमी के पेड में ऋषियों का तपस्तेज है। पुराने जमाने में शमी की लकडियों को आपस में घिस कर लोग आग सुलगाते थे। शमी की समिधा आहुत के काम आती है। पाण्डव जब अज्ञातवास करने गये थे तब उन्होंने अपने हथियार शमी के एक पेड़ पर

छिपा रखे और वहाँ कोई जाने न पाये, इसके लिये उन्होंने उस पेड़ के तने से एक नर-कंकाल बाँध रखा था।

रामचन्द्रजी ने रावण पर जो चढ़ाई की सो भी विजयादशमी के मुहूर्त्त पर। आर्य लोगों ने–हिन्दुओं ने अनेक बार विजयादशमी के मुहूर्त्त पर ही धावे बोल कर विजय प्राप्त की है। इससे विजयादशमी राष्ट्रीय विजय का मुहूर्त या त्यौहार बन गयी है। मराठे और राजपूत इसी मुहूर्त्त पर स्वराज्य की सीमा को बढ़ाने के हेतु शत्रु-प्रदेश पर आक्रमण करते थे। शस्त्रास्त्रों से सज कर और हाथी-घोड़े पर चढ़ कर, नगर के बाहर जुलूस ले जाने का रिवाज आज भी है। वहाँ शमी का और अपराजिता देवी का पूजन सीमोल्लंघन उत्सव का प्रमुख भाग है।

ऐसा माना जाता है कि शमी और अश्मंतक-वृक्ष में भी शत्रु का नाश करने का गुण है। उम्तुरे के पेड़ को अश्मंतक कहते हैं। जहाँ शमी नहीं मिलती, वहाँ उम्तुरे के पेड़ की पूजा होती है। उम्तुरे के पत्ते का आकार सोने के सिक्के की तरह गोल होता है और जुड़े हुये जवाबी कार्ड की तरह उसके पत्र ज्यादा खूबसूरत दिखाई देते हैं।

दशहरे के दिन चौमासा लगभग खत्म हो जाता है। शिवाजी के किसान सैनिक दशहरे तक खेती की चिन्ता से मुक्त हो जाते थे। कुछ काम बाकी न रहता था, सिर्फ फसल काटना ही बाकी रह जाता था। पर उसे तो घर की औरतें बच्चे और बूढ़े लोग कर सकते थे। इसमें सेना इकट्ठी करके स्वराज की सीमा को बढ़ाने के लिए सब से नजदीक मुहूर्त्त दशहरे का ही था। इसी कारण महाराष्ट्र में दशहरा त्यौहार बहुत ही लोकप्रिय था और आज भी है।

हम सब देख सकते हैं कि विजयादसमी के एक त्योहार पर अनेक संस्कारों, अनेक संस्मरणों और अनेक विश्वासों की तहें

चढी हुई हैं। कृषि महोत्सव क्षात्र महोत्सव बन गया, सीमोल्लंघन का परिणाम दिग्विजय तक पहुँचा; स्व-संरक्षण के साथ सामाजिक प्रेम और धन का विभाग करने की प्रवृत्ति का संबंध दशहरे के साथ जुड़ा। लेकिन एक ऐतिहासिक घटना को दशहरे के साथ जोड़ना अभी हम भूल गए हैं, जो कि इस जमाने में अधिक महत्त्वपूर्ण है। "दिग्विजय से धर्मजय श्रेष्ठ है। बाह्य शत्रु का बध करने की अपेक्षा हृदयस्थ षडरिपुओं को मारने में ही महान पुरुषार्थ है। नवधान्य की फसल काटने की अपेक्षा पुण्य की फसल काटना अधिक चिरस्थायी होता है।" सारे संसार को ऐसा उपदेश देने वाले मारजित्, लोकजित् बुद्ध का जन्म विजयादशमी के शुभ मुहूर्त पर ही हुआ था। विजयादशमी के दिन बुद्ध भगवान का जन्म हुआ था और वैशाखी पूर्णिमा के दिन उन्हें चार शान्तिदायी आर्यतत्वों का और अष्टांगिक मार्ग का बोध हुआ, यह बात हम भूल ही गये हैं। विष्णु का वर्तमान अवतार बुद्ध अवतार ही है। इसलिए विजयादशमी का त्योहार हमें भगवान बुद्ध के मारविजय का स्मरण करके ही मानना चाहिए।

परिचय

प्रस्तुत निबन्ध काका कालेलकर के 'जीवन का काव्य' नामक पुस्तक से चुना गया है। काकाजी महाराष्ट्रवासी पुराने गांधीवादी तथा बापू के प्रिय शिष्यों एवं सहायकों में से हैं। उनका जीवन बहुत ही सात्विक तथा सादा है। व्यक्तित्व की यही सात्विकता और सादगी उनकी रचनाओं में भी झलक मारती है। जनसाधारण के सीधे सम्पर्क में रहने के कारण काकाजी के विचार सत्य और यथार्थ के पोषक रहते हैं। उन्होंने अनेक साहित्यिक तथा राजनीतिक लेख लिखे हैं।

अभ्यास

सामान्य प्रश्न—

१—दशहरे का त्योहार किन भिन्न-भिन्न त्योहारों का समूह है ?

२—'सुवर्ण लूट' की कौन सी नई व्याख्या लेखक ने की है ?

३—विजयादशमी का क्या सन्देश है ?

शब्दाध्ययन—

१—शब्दार्थ लिखो।

समुद्रवलयांकित, क्षात्रमहोत्सव, आदरातिथ्य, विश्वजित्, तपस्तेज, सीमोल्लंघन।

व्याकरण—

१—उपर्युक्त शब्दों का सन्धि-विच्छेद करो।

२—सहित वाक्य-विग्रह करो—

इस घर में जमीन पर.........अन्तर होता है।

३—उपसर्ग किसे कहते हैं ? 'आजीविका' में 'आ' उपसर्ग लगा है। इसकी तरह के अन्य पांच उपसर्गों के द्वारा पांच शब्द बनाओ।

रचना—

१—अधोलिखित गद्यांश का अर्थ समझाकर लिखो—

(क) मनुष्य मनुष्य का संघर्ष.........प्रथम कर्तव्य था।

(ख) बीसवीं सदी.....................निर्माण किया है।

(ग) थोड़ा सा सोचने पर.....................तय की गई है।

आदेश

इस निबंध को पढ़कर नये ढंग से अन्य पर्वों पर भी निबंध लिखो। इसके लिए काका कालेलकर की 'जीवन का काव्य' पुस्तक पढ़ो।

चित्तौड़ गढ़ का युद्ध

[प्राण लेना सरल है परन्तु देना उतना सरल नहीं। सच्चा वीर ही प्राण उत्सर्ग कर सकता है। आधुनिक मशीनी युद्धों में उस आत्मोत्सर्ग का दर्शन कहाँ, जो मध्ययुगीन राजपूतों ने किया था। मेवाड़ भारतीय वीरता का प्रतीक है। आज भी राजपूताने के कण कण से उस शौर्य की ललकार उठती है। पुरुषों से भी बड़ा बलिदान तो उन वीर क्षत्राणियों का है जिन्होंने अपने सतीत्व की रक्षा में प्राणों का मोह छोड़ दिया। पद्मिनीका जौहर उसी इतिहासकी एक चिनगारी है। यहाँ स्त्रियोंके जौहर के बाद राजपूत वीरों के जौहर का वर्णन है।]

जौहर, पूर्णाहुति, पावक, वक्र, रुण्ड- अस्फुट।

जौहर-ज्वालामें कूद कूद उन सतियों के जल जाने पर,
उन भीम भयंकर लपटों में माँ बहनों के बल जाने पर,
प्रज्वलित बुभुक्षित पावक को उठ माथ नवाया वीरों ने,
उठ-उठ स्वाहा स्वाहा कर कर दी पूर्णाहुति वर वीरों ने।
मल मल कर तन में चिता-भस्म क्षण भर खेले अंगारों से,
शिर लगा चिता-रज गरज उठे गढ़ हिला-हिला हुंकारों से।
मन्दिरमें रखे सिंधोरों को फेंका जौहर की ज्वाला में,
नर मुण्ड बढ़ाने चले वीर ताण्डव-रत हर की माला में।
घायल नाहर से गरजे, ताड़ित विषधर से फुफकार चले,
खूँखार भेड़ियों के समान, वैरी दल को ललकार चले।
फाटक के लौह किवाड खोल, बोले जय खप्पर वाली की,
जय मुण्ड चबाने वाली की, जय सिंह-वाहनी काली की।
बोले, 'अरि-शोणित पी जाओ' बोले 'मरकर भी जी जाओ'
मेरे गढ़ के घायल शूरो, अरि दल से लिपट अभी जाओ।

जय बोल व्यूह में घुसे वीर, घन-मण्डल में जैसे समीर,
सरपत में जैसे अग्नि ज्वाल, दादुर में जैसे चक्र व्याल।
ले ले वरदान कपाली से, ले-ले बल गढ़ की काली से,
अरि-शीश काटने लगे वीर, छप-छप तलवार भुजाली से।
सौ-सौ वीरों के चक्र व्यूह में घूम रहा था एक वीर,
सौ-सौ धीरों के आवर्तन में झूम रहा था एक वीर।
रावल तलवार दुधारी थी, जड़ थी तो भी वह नारी थी,
भग-भग कर वह सैनिक उर में छिपती थी, सलज कुमारी थी।
वह कभी छिपी हय-पाँती में, वह कभी गजों की छाती में,
वह कभी झनक कर उलझ गयी कम्पित घातो-आघातो में।
अरि-व्यूह काटती जाती थी, अरि-रक्त चाटती जाती थी,
अरि-दल के रुण्डों-मुण्डों से रण-भूमि पाटती जाती थी।
घन सदृश गरज खिलजी बोला, गढ़ गर्जन से डग डग डोला,
पीछे जो हटा कटारी से, काटूँगा उसे दुधारी से।
भय से अरि-वीर बढ़े आगे, ले-ले शमशीर बढ़े आगे,
मुट्ठी भर गढ़ के वीरों पर, रावल के उन रणधीरों पर।
तीखे भालों से वार हुए, बरछे वक्षस्थल पार हुए,
अगणित खूनी तलवारों से, गढ़ के सैनिक लाचार हुए।
सौ जन को काट कटा योद्धा, सौ जन को मार मरा योद्धा,
शोणित से लथ-पथ लोथों पर, सोया अरि-रक्त भरा योद्धा।
दावा सी अरि की सेना थी, तरु के समान थे राजपूत,
जल गये खड़े पर कभी एक डग भी न हटे पीछे सपूत।
पतझड़ में तरुदल के समान गिर-गिर कुर्बान हुए योद्धा,
जौहर व्रत की बलि-वेदी पर चढ़-चढ़ बलिदान हुए योद्धा।
रावल के तन पर एक साथ छप-छप-छप तलवारें छपकीं;
हा, एक हृदय की ओर शताधिक बरछों की नोकें लपकीं।
क्षण भर में रावल के तन की थी अलग-अलग बोटी-बोटी
चल एक रक्त धारा निकली गढ़ के ढालू पथ से छोटी।

धारा से अस्फुट ध्वनि निकली—इस तरह अमर मरना सीखो,
तुम सती मान पर आन बान पर जौहर व्रत करना सीखो।

श्री श्यामनारायण पाण्डेय

परिचय

ये पंक्तियाँ पं० श्यामनारायण पाण्डेय के 'जौहर' नामक प्रबंध काव्य से उद्धृत की गयी हैं। पाण्डेय जी काशी के निकट सारंग तालाब में एक संस्कृत पाठशाला के प्रधानाध्यापक हैं। इस युग में भी पाण्डेय जी ने वीर काव्य की प्राचीन परंपरा को आगे बढ़ा कर हमारे साहित्य के एक आवश्यक अङ्ग की पूर्ति की है। 'त्रेता के दो वीर' 'माधव' और 'रिमझिम' जैसी छोटी छोटी रचनाओं में कलम आजमाने के बाद पाण्डेय जी ने 'हल्दीघाटी' नामक प्रबंध काव्य उपस्थित किया जिसमें उनकी प्रतिभा का पूर्ण विकास दिखाई पड़ता है। आगे चल कर उन्होंने 'जौहर' भी दिखाया। पाण्डेय जी प्रधानतः 'उत्साह' के कवि हैं और युद्ध का वर्णन उन्होंने जिस ओजस्विनी भाषा में किया है वैसा दुर्लभ है। 'हल्दीघाटी' पर पाण्डेय जी को देव पुरस्कार भी मिल चुका है। वे इस युग के वीर रस के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं।

अभ्यास

सामान्य प्रश्न—

१—जौहर शब्द से क्या तात्पर्य समझते हो? पद्मिनी ने क्यों जौहर-व्रत अपनाया?

२—रावल रतन सिंह और अलाउद्दीन की पूरी कहानी अपने शब्दों में कहो।

३—पुस्तक की सहायता लिये बिना ही चित्तौड़ गढ़ के उक्त युद्ध तथा रावल की मृत्यु का वर्णन करो।

४—रावल के इस बलिदान से क्या उपदेश मिलता है?

शब्दाध्ययन—

१—निम्नलिखित ध्वन्यात्मक शब्दों से किस प्रकार के कार्यों की ध्वनि

का बोध होता है—छूम-छूम-छूम, टुग-टुग, लथपथ लोथों, झमकझम।

२—सिंहवाहिनी, काली, खप्परवाली; मुण्ड चबाने वाली, एक दुर्गा के लिए इतने शब्दों का प्रयोग क्यों हुआ है ?

३—इन शब्दों का अर्थ बताओ, बुभुक्षित, बलि जाना, नाहर, रुण्ड, आवर्तन।

रस-अलंकार—

१—रस कितने प्रकार के होते हैं ? श्री श्यामनारायण पाण्डेय की इस कविता में कौन-सा रस है और क्यों ?

२—जब किसी वस्तु की समानता किसी दूसरी वस्तु से सम, समान, तरह, सदृश आदि शब्दों के प्रयोग से दिखलाई जाती है तो उसे उपमा अलंकार कहते हैं। इस कविता में उपमा अलंकार कहाँ-कहाँ है, बताओ।

रचना—

'बोले अरि-शोणित पी जाओ··········दादुर में जैसे वक्र व्याल' इन पंक्तियों का अपने शब्दों में अर्थ लिखो।

आदेश

ऊपर की कविता को कण्ठस्थ करो और उसका पाठ इस ढंग से करने का प्रयत्न करो कि सुनने वालों के मन में उत्साह का भाव उत्पन्न हो जाय और उनके अंग फड़क उठें।

[१६]

हिन्दी भाषा और साहित्य

[स्वतन्त्र भारत की सरकार ने हिन्दी को राजभाषा बनाने की बात स्वीकार कर ली है यद्यपि राष्ट्रभाषा के रूप में विभिन्न प्रान्तों की अधिकांश जनता ने इसे पहले ही स्वीकार कर लिया था। किन्तु राजभाषा बना कर हिन्दी के प्रति कोई विशेष कृपा नहीं की गयी है। हिन्दी ही एक ऐसी भाषा है जो समूचे देश मे किसी न किसी रूप में बोली या समझी जाती है। उस हिन्दी की उत्पत्ति और उसके साहित्य का विकास कैसे हुआ, यही इस पाठ मे दिखलाया गया है।]

बीजारोपण, सर्वमान्य, गाथा, निगुर्ण, सगुण, मर्यादा-पुरुषोत्तम, अग्रसर

भारतवर्ष में रहने वाले प्राचीन आर्यों की भाषा कौन थी, इसका पता वेदों की भाषा से लगता है। वेदों की भाषा संस्कृत भाषा का प्राचीन रूप है। वही भाषा आगे चल कर जब पंडितों और साहित्यकों की भाषा बन कर खूब सुधर सँवर गयी तो उसका नाम संस्कृत पड़ा। जन साधारण की भाषा का स्वरूप सदा बदलता रहता है। संस्कृत भाषा तो पंडितों और विद्वानों तक ही सीमित रह गयी और उधर जनता की भाषा बदल कर कुछ दूसरी ही होती गयी। गौतम बुद्ध के समय में जनता की बोल-चाल की भाषा का नाम पाली था। इसी भाषा में उन्होंने अपने उपदेश दिये। अशोक ने भी इसी भाषा में स्तम्भों पर अपनी आज्ञायें लिखवाई थीं। यही भाषा कुछ और बदली तो उसका नाम 'प्राकृत' पड़ गया। प्राकृत का अर्थ स्वाभाविक भाषा है। जनता जो भाषा बोलती थी उसका नाम प्राकृत था। विभिन्न प्रान्तों मे इस प्राकृत भाषा का रूप भिन्न-भिन्न हो गया। यहीं से आज की प्रान्तीय भाषाओं जैसे बँगला, गुजराती, मराठी, सिन्धी आदि का बीजा-

रोपण समझना चाहिये। कुछ सौ वर्षों बाद अनेक बाहरी आक्रमणकारी जातियों की भाषा के मेल से तथा प्राकृत के साहित्यिक भाषा हो जाने से उसका रूप भी बदलने लगा। अतः विभिन्न प्रान्तों में वहाँ की प्राकृत भाषाओं की जगह उन्हीं नामों की अपभ्रंश भाषायें हो गयीं; जैसे महाराष्ट्री प्राकृत की जगह महाराष्ट्री अपभ्रंश और मागधी प्राकृत की जगह मागधी अपभ्रंश। अपभ्रंश का अर्थ बिगड़ी हुई भाषा है। आभीर आदि जातियों के साथ मिलने से यहाँ के लोगों की भाषा का रूप बिगड़ गया। इसी अपभ्रंश में ही हिन्दी का पुराना रूप मिलता है। ईसा की आठवीं शताब्दी तक अपभ्रंश भी पंडितों और राजदरबारों के साहित्यिकों की भाषा हो गयी। किन्तु जनता अपनी भाषाओं को आगे ही बढ़ाती चली आ रही थी। अतः इसी काल में सिन्धी, गुजराती, मराठी, पंजाबी, हिन्दी की विविध बोलियाँ (जैसे व्रजभाषा, राजस्थानी, खड़ी बोली, अवधी, छत्तीसगढ़ी, भोजपुरी, मगही,) तथा मैथिली, उड़िया, बँगला और आसामी आदि का रूप अलग अलग बनने लगा था। तब से आज तक हिन्दी में बराबर साहित्य की रचना होती आ रही है और उसका रूप भी कुछ न कुछ सदा ही बदलता रहा है। हिन्दी की बोलियों में से एक दिल्ला मेरठ के आस-पास की बोली खड़ी बोली है जो आज सर्वमान्य साहित्यिक भाषा हो गयी है; किन्तु अन्य बोलियों जैसे व्रजभाषा, अवधी, भोजपुरी आदि में भी प्रगति हो रही है।

अतः हिन्दी साहित्य का इतिहास राजस्थानी, व्रजभाषा, खड़ी बोली, अवधी, भोजपुरी, मगही आदि सभी बोलियों या उपभाषाओं के साहित्य का इतिहास है। समस्त हिन्दी साहित्य के इतिहास को विद्वानों ने चार भागों में बाँटा है १—आदिकाल या वीर गाथा काल, (२) पूर्व मध्यकाल या भक्तिकाल (३)

उत्तर मध्यकाल या रीतिकाल और (४) आधुनिक काल या गद्यकाल।

आदि काल का प्रारम्भ कब हुआ, इसके सम्बन्ध में अभी तक कोई एक निश्चित मत नहीं है। सं० ७०० में पुष्य कवि का होना कुछ लोग बताते है परन्तु उनकी कोई रचना अभी नहीं मिली। सं० ८९० में लिखे गये खुमान-रासो का भी नाम ही मिलता है, ग्रन्थ नहीं। अतः विद्वानों ने सं० १०५० से सं० १३५६ तक के काल को आदि काल कहा है। इस काल में प्रधानतया वीर रस की कविता लिखी गयी। राजा हर्षवर्धन के बाद उत्तरी भारत में अनेक छोटे-छोटे राजपूत राजा हो गये थे। ये सभी आपस में लड़ते रहते थे। उस काल में चारण या कवि अपने राजाओं की वीरता और प्रेम की प्रशंसा कर के ही सम्मान पाते थे। ऐसी रचनायें इस काल में काफी हुई। वीरों की कथा की अधिकता होने के कारण साहित्य के इतिहास के इस काल को वीर-गाथा-काल भी कहते हैं। इन गाथा-काव्यों को रासा कहते थे। इस काल के ग्रन्थों में प्रधान पृथ्वीराजरासो है जिसकी रचना चन्दवरदाई ने की थी। यह डिंगल (पुरानी राजस्थानी) मिश्रित हिन्दी में है। जगनिक का आल्हा या परमाल रासो, जो आज भी गांवों में गाया जाता है, उसी काल की रचना है।

यह मुसलमानों के आक्रमण का काल था, धीरे-धीरे विदेशी मुसलमान यहाँ शासक बन गये। राजपूत उनसे बार-बार लड़ कर पराजित हुए। मुसलमानों ने एक केन्द्रित शासन की स्थापना की और यहीं रह कर बलपूर्वक धर्म प्रचार भी करने लगे। इन कारणों से हिन्दुओं में निराशा की भावना भर गयी। धर्म और राज्य की रक्षा वे तलवार लेकर नहीं कर सके, अतः उन्होंने कलम का आश्रय लिया और ईश्वर की ओर दृष्टि डाली। इस प्रकार हिन्दी साहित्य में एक नये युग का प्रादुर्भाव हुआ जिसे भक्ति काल [सं० १३७५-१७००] कहते हैं। यह नाम इसलिये

पड़ा कि कवि अब राज दरबार नहीं, भगवान के दरबार की ओर बढ़े। भक्ति की लहर जो समाज में दिखाई पड़ रही थी, साहित्य में भी दौड़ती दिखलायी पड़ी। मुसलमान यहाँ एक नया धर्म लेकर आये थे और उन्हें आये भी ३-४ सौ वर्ष हो गये थे। उनके साथ फारस से सूफी मत को मानने वाले सन्त भी आये थे। इसके पूर्व हमारे देश में शंकराचार्य जैसे सन्यासी हो चुके थे और वल्लभाचार्य तथा निम्बार्क और स्वामी रामानन्द जैसे सन्त इस काल में हुए। इन सबका का प्रभाव साहित्य पर भी पड़ा और उसमें भक्ति की धारा फूट कर बह पड़ी।

यह भक्ति की धारा दो प्रधान मार्गों से होकर बही है:—निर्गुण मार्ग से और सगुण मार्ग से। जो भगवान को निराकार या निर्गुण मानते थे वे तो निर्गुण भक्त कहलाये और जो उसे साकार या सगुण, अवतार मान कर उपासना करते थे वे सगुण मार्गी कहलाये। इन दोनों की भी दो-दो शाखायें हैं। निर्गुणोपासकों में दो तरह के भक्त हैं—१—ज्ञानश्रयीभक्त जैसे कबीर, दादू, सुन्दरदास, रैदास आदि। इन सन्त लोगों ने धर्मों के पाखण्ड और ऊपरी पूजापाठ आदि का बहुत खण्डन किया और योग और ज्ञान का उपदेश किया। २—निर्गुणोपासक सूफी मत के आधार पर चलने वाले प्रेममार्गी कवि थे। इन में सबसे प्रमुख स्थान जायसी का है जिन्होंने पद्मावत लिखा। पद्मावत में अवधी भाषा में चितौड़ पर अलाउद्दीन की चढ़ाई और पद्मिनी के जौहर का वर्णन है।

भक्ति-काल की सगुण धारा की भी दो शाखायें हैं—(१) रामोपासक शाखा और (२) कृष्णोपासक शाखा। पहले में वे भक्त हैं जो मर्यादा-पुरुषोत्तम राम को भगवान का अवतार मानते हैं और सेवक या दास के रूप में उनकी उपासना करते हैं। गोस्वामी तुलसीदासजी इस धारा के सबसे कवि हैं। उन्होंने अवधी भाषा में 'रामचरित-मानस' और विनय-पत्रिका' की रचना की है।

गीतावली, कवितावली, आदि भी आपकी प्रसिद्ध रचनायें हैं। आप को हिन्दी साहित्य का सब से बड़ा कवि कहा जाता है। कृष्णोपासक भक्त कृष्ण को भगवान का अवतार मान कर माधुर्य भावसे उपासना करते हैं और सखा के रूप में उनका ध्यान करते हैं। इन लोगोंने बाल कृष्ण की लीलाओं और गोपिकाओं के विरह का बड़ा ही मार्मिक वर्णन किया है। कृष्ण-काव्य, राम-काव्य की अपेक्षा अधिक सरस और हृदयग्राही हुआ है। सूरदास जी इस धारा के सबसे बड़े कवि हैं। इनका सबसे प्रधान ग्रन्थ सूरसागर है। सूरदास जी के बारे में तो किसी ने यहाँ तक कह दिया है कि—

सूर सूर, तुलसी ससी, उड्डुगन केशवदास।
अब के कवि खद्योत सम, जहँ तहँ करत प्रकास॥

कृष्णोपासक कवियों में मीरा, नन्ददास, और रसखान का नाम भी सब प्रमुख है। इस काव्य-धारा के सभी कवियों ने ब्रजभाषा में कविता लिखी है। महाकवि केशवदास भी इसी काल में हुए जिन्होंने 'रामचन्द्रिका' और 'कविप्रिया' आदि ग्रन्थ लिखे थे। सेनापति और गंग भी इसी काल में हुए।

सं० १७०० से सं० १९०० तक रीति काल माना जाता है। इस काल में कवियों ने फिर दरबारों का सहारा लिया और राजाओं को प्रसन्न कर के, उनका आश्रित बन कर रहने लगे। फलस्वरूप राजाओं के विलास और शृङ्गार-प्रेम को इन्हों ने काव्य में उतार दिया। इसी से इस काल को शृंगार-काल भी कहते हैं, इस काल में ब्रजभाषा में ही अधिकतर रचनायें हुईं और उनमें अनेक ऐसी भद्दी और अनैतिक बातें मिलती हैं जिन्हें आज अश्लील समझा जाता है। 'बिहारी सतसई' के लेखक बिहारी, मतिराम, देव, भूषण, पद्माकर, ठाकुर, घनानन्द आदि रस-सिद्ध कवि इसी काल में हुए। इस काल काल का साहित्य हमारी संस्कृत के पतन का

साहित्य है; अतः उसमें उच्च और आदर्शमय भावनायें बहुत कम दिखलाई पड़ती हैं।

रीतिकाल के बाद हिन्दी साहित्य में आधुनिक काल या गद्य काल का आरम्भ सं० १९०० या सन् १८४३ के आसपास से होता है। इसी समय हिन्दी के महान प्रतिभाशाली लेखक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र उत्पन्न हुए जिन्होंने हिन्दी में गद्य का प्रचार किया। अंग्रेजी और बँगला की देखादेखी हिन्दी में भी नाटक, निबन्ध, कहानी, उपन्यास, समाचार-पत्रों आदि का प्रारम्भ इसी काल में हुआ। हरिश्चन्द्र को आधुनिक गद्य का पिता कहा जाता है। इसके बाद सं० १९५७ के बाद आधुनिक युग के भीतर ही एक नये युग का प्रारम्भ हुआ जिसे द्विवेदी-युग कहते हैं। स्वर्गीय महावीर प्रसाद द्विवेदी ने करीब २० वर्षों तक हिन्दी की महान सेवा की और उसके भीतर जो भी कमी उन्हें दीख पड़ी, उन्होंने उसी विषय पर लेखनी चलायी। उन्होंने खड़ी बोली को कविता की भाषा बना कर और गद्य की भाषा को माँज कर हिन्दी की बहुत सेवा की। इस युग का दूसरा कदम छायावाद युग कहलाया। इसी काल में वर्तमान हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ लेखक और आलोचक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, उपन्यास-सम्राट प्रेमचन्द, महाकवित्रयी प्रसाद, निराला और सुमित्रानन्दन पन्त, नाटककार श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र, निबन्धकार हजारी प्रसाद द्विवेदी और गुलाब राय प्रभृत हुए। इस प्रकार वर्तमान हिन्दी साहित्य उत्तरोत्तर उन्नति के मार्ग पर अग्रसर होता जा रहा है।

—सम्पादक

अभ्यास

सामान्य प्रश्न—

१—वैदिक संस्कृत से, पाली प्राकृत, अपभ्रंश और हिन्दी का विकास कैसे हुआ?

२—हिन्दी की प्रधान उपभाषायें या बोलियां कौन-कौन सी हैं?

३—हिन्दी साहित्य के इतिहास को कितने कालों में बाँटा गया है और क्यों ?

४—भक्ति काल की चार धारायें कौन कौन सी हैं ? उस काल के प्रमुख कवि कौन कौन थे ?

शब्दाध्ययन—

१—शब्दार्थ लिखो—अपभ्रंश, प्राकृत ।
२—नीति से जैसे नैतिक विशेषण बना वैसे ही, प्रकृति, स्वभाव, योग, व्यवहार, संस्कृति से विशेषण बनाओ ।

३—आधुनिक और वर्तमान मे क्या अन्तर है ?

व्याकरण—

१—सन्धि विच्छेद कर के सन्धि का नाम बताओ—उत्तरोत्तर, हरिश्चन्द्र, प्रादुर्भाव ।

२—समास बताओ—उपन्यास-सम्राट्, दिल्ली मेरठ, मर्यादा पुरुषोत्तम

---

[१७]

राखी की चुनौती

[हमारे पर्व हमारे जीवन से कितने संबद्ध हैं ! उनमें से कुछ तो हमारे आपसी संबन्धों को दृढ़ करने के लिए होते हैं। रक्षा-बन्धन या राखी का त्योहार भी ऐसा ही है। यह भाई बहन के पवित्र सम्बन्ध का पर्व है। इस दिन बहनों की खुशी का क्या कहना है ! वे अपने भाइयों को इसी दिन राखी बांधती हैं। मध्ययुग में कितनी राजपूत ललनाओं ने मुसलमानों के पास राखी भेज कर उन्हें भाई बनाया था। राखी के ऐसे ही पर्व पर एक बहिन अपने भाई की याद कर रही है। वह राष्ट्रीय आन्दोलन के सिलसिले में जेल गया है। बहिन को भाई के बिना दुख हो रहा है परन्तु वह यह कहकर मन को ढाढ़स देरही है कि वह राखी की लाज रखने के लिए ही जेल गया है। इसीलिये उसे खुशी तो नहीं है परन्तु रुलाई भी नहीं है।]

तड़ित्, पुष्प, स्वाधीनता

बहन आज फूली समाती न मन में,
तड़ित् आज फूली समाती न-घन में।
घटा है न फूली समाती गगन में,
लता आज फूली समाती न वन में।
कहीं राखियाँ हैं, चमक है कहीं पर,
कहीं बूँद है, पुष्प प्यारे खिले हैं।
ये आई है राखी, सुहाई है पूनो,
बधाई उन्हें जिनको भाई मिले हैं।
मैं हूं बहन किन्तु भाई नहीं है,
है राखी सजी पर कलाई नहीं है।

है भादों, घटा किन्तु छाई नहीं है,
नहीं है खुशी पर रुलाई नहीं है।
मेरा बन्धु मां की पुकारों को सुन कर के
तैयार हो जेलखाने गया है।
छीनी हुई माँ की स्वाधीनता को
वह जालिम के घर में से लाने गया है।

—श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान

परिचय

यह कविता श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान के एक मात्र कविता संग्रह 'मुकुल' से ली गई है। सुभद्राजी जबलपुर की रहने वाली थीं। आपने जीवन के अंतिम दिनों तक वे वहाँ की धारा सभा की सदस्यता भी थीं। राजनीति में आने से पूर्व उन्होंने अनेक कवितायें लिखी थीं। बाद में कविता लिखना तो बंद सा हो गया परन्तु छोटी छोटी कहानियां बराबर लिखती रहीं। सुभद्राजी में नारी-सुलभ छलकती हुई भावुकता थी और इससे भी विशेषता थी उन अनुभूतियों को सरल तथा सीधी भाषा में व्यक्त कर देने की। वेश भूषा की तरह इन की कविता में भी कोई बनाव सिंगार नहीं। बच्चों संबंधी इन्होंने बड़ी ही अनुभूति प्रवण कवितायें लिखी हैं। आप की 'झांसी की रानी' कविता इतना लोकप्रिय है कि लोगों की जबान पर रहती है। 'मुकुल' पर आप को ५००) का सेकसरिया पुरस्कार भी मिला था।

अभ्यास

सामान्य प्रश्न—

१—राखी पर्व की क्या महत्ता है?
२—बहिन को भाई के बिना खुशी तो नहीं है परन्तु रुलाई भी क्यों नहीं है?
३—राखी के दिन सारी सृष्टि मगन क्यों है?

शब्दाध्ययन—

१—कविता में आये हुए उर्दू शब्दों को छाँटो तथा उनके औचित्य पर विचार प्रकट करो।

२—'फूली न समाना' मुहावरे का अर्थ लिखो तथा उसका प्रयोग अपने वाक्य में करो।

रचना—

१—निम्नलिखित पंक्तियों का अर्थ सरल भाषा में समझाओ—
मैं हूँ बहन किन्तु भाई नहीं है ....रुलाई नहीं है।

आदेश

राखी पर लिखी गई किसी अन्य कविता से इसकी तुलना करो।

[१८]

शुनःशेप

[कहते हैं कि बंगाल के पिछले अकाल में पेट के लिए लोगों ने अपनी सन्तान बेच दी। पापी पेट जो न करा दे। वर्तमान युग में ही ऐसी घटनायें नहीं हुई हैं। आज से पाँच छः हजार वर्ष पहले भी ऐसे लोगों की कमी नहीं थी, जो पेट के लिए अपने पुत्र को बेच देते थे। अजीगर्त्त ऋषि ऐसे ही लोभी पिता थे और शुनःशेप ऐसा ही अभागा पुत्र था। कुछ लोग इस कहानीके द्वारा यह सिद्ध करना चाहते हैं कि प्राचीन भारतमें नरबलि की प्रथा थी। परन्तु विशेष रूप से इस में धन लोभी पिता के स्वभाव की ओर संकेत किया है।]

अमृतत्व, उदुम्बर, अभिषेक, ऋत्विज, अवभृथ, द्रोणकलश

इक्ष्वाकु वंश के राजा हरिश्चन्द्र को कोई पुत्र नहीं था। उसके सौ स्त्रियाँ थीं। एक बार उस के घर में पर्वत और नारद ऋषि आकर रहे। राजा ने नारद से पूछा—"ज्ञानी और अज्ञानी सभी पुत्र को चाहते हैं। हे नारद! बतलाइये मुझे पुत्र से क्या फल मिलेगा"? एक कथा कह कर उससे पूछा गया था, उस ने उत्तर दिया "पिता अपने पुत्र का मुख देखने पर उस में ऋण को धरता और अमृतत्व को पाता है। पृथ्वी, अग्नि तथा जल इन सब मे जितने भाग हैं वे पुत्र में प्राप्त होते हैं। पिता पुत्र के द्वारा घोर अंधेरे को पार करता है। अन्न जीवित रखता है; वस्त्र तन ढकता है; रूप स्वर्ण देता है, पशु भार ढोते हैं, बेटी दया पात्र है; स्त्री साथी है; परन्तु पुत्र परम लोक में ज्योति है। हे राजन! अपुत्र का कोई ठिकाना नहीं। इसे पशु भी जानते हैं। इसलिए तू वरुण राजासे प्रार्थना कर कि मेरे पुत्र हो तो उसे तुझे चढाऊँ।"

'अच्छा' कह कर वह वरुण राजा के पास गया और उनसे

विनती की कि मेरे पुत्र हो जाय तो उस से तेरा याग करूँ ! उसे रोहित नाम का पुत्र हुआ। वरुण ने राजा से कहा—"तेरे पुत्र जन्मा, उससे मेरा याग कर।" राजा ने कहा—"जब पशु दस दिन बढ़ जाता है तब वह यज्ञके योग्य होता है। दस दिन लाँघने दो तो तुझे यजूं।" वह दस दिनका हो गया। वरुण ने राजा से कहा—"दस दिन को लाँघ गया, अब मुझे इस से यज" राजा बोला—"जब पशु के दांत निकल आते हैं तब वह यज्ञ के योग्य होता है। दांत इस के हो जाँय तब तुझे यजूँ।" उस के दांत हो गये। वरुण ने अपनी माँग फिर दुहराई। इस बार भी राजा ने दांत गिरने तक उसे टाल दिया। दांत भी गिर गये। वरुण फिर आया परन्तु राजा ने दाँत उगने तक की मुहलत माँगी। जब दाँत फिर उग आये और वरुण द्वार खटखटाने लगा तो राजा ने कहा कि जब क्षत्रिय कवचधारी होता है तब वह मेध्य होता है। इसे कवच पाने दो तो यजूं!" वह कवच पा गया और वरुण आ धमका। इस बार राजा ने बेटे को बुलाया और कहा—"रोहित, मुझे तुम को इसने दिया है, मैं अब तुझ से इसे यजूँगा।" वह 'नहीं' 'नहीं' कहते हुए धनुष तान कर वन में चला गया। वहाँ वह वर्ष भर घूमता रहा। इधर इक्ष्वाकुवंशी राजा को वरुण ने धर लिया और जलोदर हो गया। यह रोहित ने सुना तो वह जंगल से बस्ती में आया। उसके पास इन्द्र ब्राह्मण के रूप में आकर बोला—"हे रोहित! श्रमी को ही लक्ष्मी मिलती है। जो निगोड़ा बैठा रहता है, वह पापी है। इन्द्र घूमने वाले का साथी है, तू घूमता रह।"

"मुझे ब्राह्मण ने कहा है कि घूमता रह" कहकर वह फिर घूमने चला गया। दूसरे वर्ष के अंत में जब वह फिर बस्ती में आया तो पुरुष रूपधारी इन्द्र ने कहा—"घूमने वाले की जाँघ मोटी होती है; आत्मा बढ़ता है; फल मिलता है; मार्ग-श्रम से सभी पाप नष्ट होते हैं; तू घूमता रह!" रोहित तीसरे वर्ष भी वन में रहा। वर्षान्त में वह पुनः लौटा और इन्द्र ने कहा—"बैठे

का भाग्य बैठा रहता है, खडे का भाग्य खडा रहता है, पडे का भाग्य सोता रहता है और चलते का भाग्य बढता रहता है। तू घूमता ही रह।" वह फिर लौट गया। चौथा वर्ष भी वन मे बिता कर लौटने पर उसने इन्द्र से सुना—"कलि सोता है, द्वापर स्थान छोडता है, त्रेता खड़ा रहता है और कृत चलता है। अत तू घूमता ही रह।' फलत उसने पाँचवा वर्ष भी जगल में बिताया। लौटा तो इन्द्र ने फिर नया तर्क उपस्थित किया—"विचरने वाला मीठा फल उदुम्बर और मधु पाता है। सूय की महिमा देखो, वह ऊँघता नहीं है घूमता रहता है। घूमता ही रह।" छठें वर्ष भी रोहित वन में वापस चला गया।

वन में उसे भूख से मरता हुआ सुयवस का पुत्र अजीगर्त ऋषि मिला। उसके तीन पुत्र थे। रोहित ने उससे कहा—"ऋषे, मैं तुझे सौ गायें दूगा। इनमें से एक को मेरे हाथ बेच दो। उसको यज कर मैं अपने को बचाऊँगा।" वह बडे पुत्र को पकड कर बोला इसे तो नहीं' और छोटे को पकड कर माता ने कहा—'इसे तो नहीं"। दोनों मझले पुत्र शुन शेप को बेचने पर राजी हो गये। रोहित सौ गायों म शुन शेप को खरीद कर वन से ग्राम को आया, आ कर वह पिता से बोला—"तात, मैं इससे अपने का बदल बेचता हूँ।" राजा उसी को लेकर वरुण के पास पहुँचा। वरुण ने कहा—"अच्छा क्षत्रिय से ब्राह्मण बढ कर है।" और राजा को राजसूय यज्ञ समझाया। राजा ने उस अभिषेक के यज्ञ में बलि के लिए पशु की जगह उस पुरुष को पकडा। राजा के यज्ञ मे विश्वामित्र होम करने वाले, जमदग्नि यज्ञ का प्रबन्ध करने वाले, वशिष्ठ भला बुरा देखने वाले और अयास्य साम गाने वाले थे।

जब शुन शेप को मन्त्रित किया गया तो उसे खूटे से बाँधने वाला कोई न मिला। सुयवस का पुत्र अजीगर्त (शुन शेप का बाप) बोला "मुझे और गाय दो तो मैं इसको बाँधूँगा।" उसे और सौ गायें दी गयीं। जब उसे मन्त्रित कर दिया गया बध दिया गया मन्त्र

पद दिये गए और उसके चारों ओर आग घुमा दी गई तो कोई उसे मारनेवाला न मिला। सुयवस का पुत्र अजीगर्त बोला—"मुझे और सौ गायें दो, मैं इसे काट दूँगा।" वैसा ही हुआ। वह खड्ग पर धार देता हुआ आया। अब शुनःशेप ने सोचा—"नहीं, पशु की ही तरह ये मुझे काटना चाहते हैं, भला मैं देवताओं को तो पुकारूं!" वह पहले देवताओं में प्रथम प्रजापति के पास पहुंचा और स्तुति की। प्रजापति ने कहा—"अग्नि देवताओं में से सब से पास है, उससे प्रर्थना कर।" अग्नि ने कहा—"सविता सब जन्म वालों का स्वामी है, उसी के पास जा।" सविता ने उसे उत्तर दिया—"वरुण के लिए बाँधा गया है, उसी के पास जा।" इस प्रकार उसने क्रमशः अग्नि, विश्वदेव, इन्द्र, अश्विनी कुमारों और उषा की स्तुति की। इन्द्र ने प्रसन्न होकर उसे स्वर्ण-रथ दिया और उषा ने उसे पाशमुक्त किया। ऐक्ष्वाकु हरिश्चन्द्र भी नीरोग हो गया।

अब ऋत्विजों ने शुनःशेप से कहा कि "तुम्हीं हमारी आज दिन की प्रधानता लो।" उसने सोमरस निकाला, फिर सोम को द्रोणकलश में रखा। जब राजा हरिश्चन्द्र ने उसे छू लिया तो उस सोम से हवन किया। पश्चात् राजा को अवभृथ स्नान कराया। अब शुनःशेप विश्वामित्र की गोद में जा बैठा। सुयवस का पुत्र अजीगर्त बोला—"ऋषे! मेरे पुत्र को लौटा दो!" विश्वामित्र ने इनकार कर दिया। अजीगर्त ने अब शुनःशेप को लालच देकर बुलाया। परन्तु शुनःशेप ने फटकार कर उसका संधि-प्रस्ताव ठुकरा दिया। अब विश्वामित्र ने उसे अपना सबसे बड़ा पुत्र बनाया। विश्वामित्र के पुत्रों में मधुच्छन्द से बड़े पचास लड़कों ने इसका बहिष्कार किया। इस पर उन्होंने उन्हें शाप देकर अन्त्यज बना दिया। परन्तु छोटे पचास पुत्रों ने जरा भी चीं-चपड़ नहीं की। इस पर विश्वामित्र ने प्रसन्न होकर उन्हें वरदान दिया।

—चन्द्रधर शर्मा गुलेरी

परिचय

यह कहानी 'ऐतरेय ब्राह्मण' से अनूदित की गयी है। गुलेरी जी पंजाब में गुलेर नामक गाँव के रहने वाले थे, परन्तु उनके जीवन का अंतिम समय काशी में ही व्यतीत हुआ। गुलेरीजी संस्कृत, पाली, प्राकृत तथा अपभ्रंश के प्रकाण्ड पण्डित थे। इसीलिये उन्होंने पुरातत्व सम्बंधी अनेक खोजपूर्ण निबंध लिखे हैं। गुलेरीजी ने बहुत दिनों तक, 'काशी नागरी प्रचारिणी पत्रिका' का सम्पादन किया और अंतिम समय तक काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्कृत महाविद्यालय के प्रिंसिपल के पद को सुशोभित किया। आप बड़े ही सरल हृदय, विनोदप्रिय तथा मिलनसार स्वभाव के थे। 'उसने कहा था' नामक प्रसिद्ध कहानी आप ही की लिखी हुई है। हिन्दी के दुर्भाग्य से ऐसे प्रतिभा-सम्पन्न विद्वान का निधन असमय में ही अल्प आयु में हो गया।

अभ्यास

सामान्य प्रश्न—

१—राजा हरिश्चन्द्र ने पुत्र की प्राप्ति के लिए क्या किया ?

२—रोहित का पिता की आज्ञा का उल्लंघन करना कहाँ तक उचित है ?

३—अजीगर्त का चरित्र-चित्रण करो।

शब्दाध्ययन—अधोलिखित शब्दों के अर्थ लिखो—

बहिष्कार, अवभृथ, ऋत्विज, द्रोणकलश

व्याकरण—रेखांकित शब्दों की पदव्याख्या करो—

जब शुनःशेप मंत्रित किया गया तो खूँटे में बाँधने वाला कोई न मिला।

मुहावरा—'नाक' सम्बंधी पाँच मुहावरे बनाकर अपने वाक्यों में प्रयोग करो।

रचना—सम्पूर्ण कहानी को अपनी भाषा में लिखो।

आदेश

इस कहानी से मिलती जुलती एक कहानी लिखो जिसमें लोभी पिता का चरित्र चित्रित किया गया हो।

---

[१६]

स्वतंत्रता-संग्राम का सिंहावलोकन

[भारत को स्वतंत्रता मिल जाने के बाद जो लोग पैदा हो रहे हैं या होंगे, उन्हें इस बात का अनुमान करना जरा कठिन होगा कि दो ढाई सौ वर्षों तक परतंत्र रहने वाले देश के लोगों ने संसार के सबसे शक्तिशाली ब्रिटिश साम्राज्य से किस प्रकार अपनी स्वतंत्रता को प्राप्त करने के लिए अनवरत संघर्ष किया और अन्त में महात्माजी के अहिंसात्मक मार्ग पर चल कर सफलता प्राप्त की। उसी संघर्ष की कहानी यहाँ संक्षेप में दी गयी है।]

सत्याग्रह, दायित्व, पुनरुत्थान, बहिष्कार, षड्यंत्र, धारा-सभा

किसी भी राष्ट्र के स्वतंत्रता-संग्राम का इतिहास उसकी महान राष्ट्रीय संस्थाओं का इतिहास होता है। अतः अपने देश की स्वतंत्रता के इतिहास को समझने के लिए हमें अपने देश की महान राष्ट्रीय संस्था–कांग्रेस के इतिहास की ओर दृष्टि डालनी होगी। पराधीनता से स्वतंत्रता प्राप्ति तक राष्ट्र को ६५ वर्षीय यात्रा के बीच जितने भी संघर्ष और आन्दोलन हुए उनमें इस राष्ट्रीय कांग्रेस का ही सबसे अधिक हाथ रहा। कांग्रेस का जन्म १८८५ इ० में एक अंग्रेज के, जिनका नाम ह्यूम था, प्रयत्न से हुआ। उसके पहले ही १८५७ इ० में अंग्रेजी शासन के विरुद्ध एक महान विद्रोह हो चुका था जिसमें हिन्दू-मुसलमान सबने समान रूप से भाग लिया था। किन्तु दुर्भाग्यवश कई कारणों से वह असफल रहा। फिर भी स्वतंत्रता की भावना जो वहाँ के लोगों के हृदय में जाग चुकी थी, बुझ नहीं सकी। शिक्षा, संस्कृति, सुधार आदि पुनरुत्थान सम्बन्धी आन्दोलनों के रूप में यह भावना बढ़ती ही गयी। कांग्रेस का जन्म तो उन गुप्त समितियों की

ध्वंसात्मक कार्रवाइयों को रोकने के लिए हुआ था जो शासन के विरुद्ध संघटित हुई थीं, पर आगे चलकर उसका रूप एक राजनीतिक संस्था का हो गया जिसने अन्त मे भारतवर्ष को विदेशी सत्ता के शासन से मुक्त किया।

इस ६५ वर्ष की लम्बी अवधि को स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए होने वाले विभिन्न प्रयत्नों की दृष्टि से पांच भागो में बांट सकते हैं:—(१) प्रार्थनाकाल (२) षड़यन्त्रकाल (३) सत्याग्रह-काल (४) दायित्व काल (५) क्रान्तिकाल।

सन १८८५ से १९०० तक के समय को प्रार्थना-काल कहा जा सकता है; क्योकि उस समय कांग्रेस को सरकार का विश्वास नहीं प्राप्त था और वह सरकार के प्रति अपने को स्वामि भक्त सिद्ध करने के लिए सतत प्रयत्न करता रही। नौकरियो की प्राप्ति तथा सुधार सम्बन्धी कार्यों और धारा-सभा में जनता के प्रतिनिधित्व के लिए बराबर प्रार्थना-पत्र उपस्थित किये जाते रहे। कांग्रेस द्वारा संचालित आन्दोलन का परिणाम यह था कि ऐसे सुधारो के लिए सरकार को बाध्य होना पड़ा। किन्तु केवल इन छोटे-मोटे सुधारों से काम नहीं चल सकता था। शिक्षित जनता की बेचैनी बढ़ती हो गई। इसी बीच लार्ड कर्जन वाइसराय हो कर आये। इनका शासन-काल अनेक दुष्कार्यों जैसे बंग भग तथा दमन के कानूनों के लिए कुख्यात है। इसी का परिणाम यह था कि देश के नवयुवक वैधानिक रास्ते को छोड़ कर गुप्त षड़यन्त्रों और हिंसात्मक कार्यों की ओर तेज़ी से बढ़ने लगे। यह हमारे स्वतंत्रता-संग्राम के इतिहास का दूसरा काल—षड़यन्त्र-काल है। इसी काल में स्वदेशी आन्दोलन और बंग-भंग आन्दोलन भी हुए थे। १८ जुलाई १९०८ को लोकमान्य तिलक को ६ वर्ष का कारावास दण्ड दिया गया। १९१२ में दिल्ली के चांदनी चौक में लार्ड हार्डिंज पर बम भी इसी काल में फेंका गया था। सन् १९१६ मे श्रीमती एनी बेसेण्ट और लोकमान्य तिलक ने होमरूल आन्दोलन

आरम्भ किया। इस प्रकार १९००से १९१८ तक का काल षड्यन्त्रों और आन्दोलनों का काल है।'

सन् १९१६ में मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार लागू किया गया। किन्तु इसके पहले ही पंजाब का रौलट बिल और जालियान वाले बाग का हत्याकाण्ड भी हो चुका था। इन्हीं दिनों महात्मा गांधी दक्षिणी अफ्रीका से भारत में आये थे और चम्पारन तथा खेड़ा में सत्याग्रह का प्रयोग कर रहे थे। लोकमान्य तिलक के देहावसान के उपरान्त कांग्रेस का नेतृत्व गांधी जी के हाथों में आया। १९१९ में ही गांधी जी ने हिंसा की निन्दा का प्रस्ताव अमृतसर कांग्रेस में पास कराया। इसी समय खिलाफत आन्दोलन भी प्रारम्भ हुआ। हिन्दू-मुसलमान एक होकर १९२० में सरकार से असहयोग करने के लिए कटिबद्ध हुए। इस प्रकार १९१८ से लेकर १९३५ तक के काल को सत्याग्रह और असहयोग का काल कह सकते हैं जब कि गांधीजी के सत्य और अहिंसा के सिद्धान्तों के अनुसार हमारा स्वतंत्रता-संग्राम चलता रहा। १९२१ में गांधीजी ने देशव्यापी असहयोग आन्दोलन शुरू किया जिसमें विदेशी सामानों का बहिष्कार किया गया, सरकार के साथ असहयोग की नीति अपनायी गयी; स्कूल, कालेज, कचहरी, धारासभा आदि का बहिष्कार किया गया और गुजरात में करबन्दी आन्दोलन शुरू किया गया। अचानक चौरीचौरा में जनता ने पुलिस थाने को जला दिया। गांधी जी को इस हिंसात्मक कार्य का इतना धक्का लगा कि उन्हों ने असहयोग आन्दोलन को बन्द कर दिया। इसी बीच गांधी जी गिरफ्तार हो गये और उन्हें ६ वर्षों की सजा हो गई। १९२५ में कांग्रेस ने कानपुर अधिवेशन में धारा-सभाओं में जाने का प्रस्ताव पास किया। जो लोग धारा-सभाओं में गये उनको शीघ्र ही अपनी गलती मालूम हुई और १९३० में उन सब लोगों ने इस्तीफा दे दिया। १९२८ में कलकत्ता में पं० मोतीलाल नेहरू के सभापतित्व में कांग्रेस ने एक प्रस्ताव पास कर एक वर्ष

के भीतर औपनिवेशिक स्वराज्य देने की नोटिस सरकार को दी। इसी सबन्ध में गांधीजी और तत्कालीन वाइसराय लार्ड इरविन में समझौते की बातचीत भी चली जो असफल रही। अन्त में लाहौर में ३१ दिसम्बर १९२९ को प० जवाहरलाल नेहरू के सभापतित्व में कांग्रेस ने पूर्ण स्वतंत्रता को ही अपना लक्ष्य घोषित किया और सारे देश में जोरदार सत्याग्रह छेड़ दिया गया। विदेशी वस्त्र, शराब, गाँजा आदि का बहिष्कार किया गया और अनेक स्थानों में करबन्दी आन्दोलन भी शुरू किया गया। भयभीत होकर ब्रिटिश सरकार ने गोलमेज-सम्मेलन का आयोजन किया परन्तु वह भी असफल हुआ। सत्याग्रह चल ही रहा था और देश भर में लाखों आदमी जेलों में जा चुके थे। लन्दन में दूसरी बार भी गोलमेज सम्मेलन हुआ परंतु वह भी असफल ही रहा। १९३२-३३ में सत्याग्रह आन्दोलन का दूसरा दौर शुरू हुआ जिसमें १ लाख २० हजार व्यक्ति गिरफ्तार हुए थे। इस बार सरकार ने अत्यन्त निर्मम और कठोर दमन किया। १९३४ में सत्याग्रह स्थगित हो गया।

इसी वर्ष बम्बई कांग्रेस में राजेन्द्र बाबू के सभापतित्व में चुनाव में भाग लेने का निश्चय किया गया। १९३५ में नया भारत-कानून पास हुआ और उनके अनुसार १९३७ में निर्वाचन हुआ जिसमें कांग्रेस ने भी भाग लिया। उसे आशातीत सफलता प्राप्त हुई और ११ में से ८ प्रान्तों में कांग्रेसी मन्त्रीमंडल बने। यहीं से एक नये युग का प्रारम्भ होता है जिसे दायित्व—काल कहते हैं, क्योंकि हमारे नेताओं ने इस काल में यह दिखला दिया कि वे स्वतंत्रता मिल जाने पर शासन-सूत्र भी संभाल सकते हैं। दो वर्ष तीन महीने तक कांग्रेस ने शासन किया और इस बीच उसने मद्य-निषेध, शिक्षा और भूमि-सुधार सम्बन्धी अनेक प्रशंसनीय कार्य किये। १९३९ में द्वितीय महायुद्ध प्रारम्भ होने पर कांग्रेस ने ब्रिटिश सरकार के साथ युद्ध में सहयोग न करने का निश्चय

किया और उसने मंत्रिमण्डलों से पदत्याग कर दिया। सन् १९४१ में गांधी जी ने व्यक्तिगत सत्याग्रह आन्दोलन छेड़ दिया।

अब ब्रिटिश सरकार से यहाँ की जनता ऊब चुकी थी और गांधीजी भी अपना धैर्य खोते जा रहे थे। अन्त में गांधीजी ने स्पष्ट रूप से अंग्रेजों से भारत छोड़ने की मांग की। ८ अगस्त १९४२ को बम्बई में कांग्रेस की मांगें प्रस्ताव रूप में सामने आईं, परन्तु दूसरे ही दिन देश के सभी बड़े-बड़े नेता पकड़ कर जेलों में डाल दिये गये। इस प्रकार यह ९ अगस्त क्रान्ति का पहला दिन था। नेताओं की गिरफ्तारी का समाचार बिजली की तरह देश भर में फैल गया। अधिकारियों ने चारों तरफ क्रूर दमन का सहारा लिया जिससे जनता के हृदय की दबी हुई भावनायें आग की तरह भभक उठीं। सारे देश में हिंसात्मक और अहिंसात्मक क्रान्ति प्रारम्भ हो गयी। जनता ने सरकारी दफ्तरों पर कब्जा करना और रेलों और सड़कों को तोड़ना शुरू कर दिया। ब्रिटिश सरकार ने इस क्रान्ति को दबाने के लिए अपनी सारी शक्ति लगा दी। घोर दमन हुआ, हजारों आदमी मारे गये, लाखों जेल गये और न जाने कितने गांव जला दिये गये। श्री जयप्रकाशनारायण जैसे नेता जेल से भागकर फरार रूप में जनता में काम करने लगे। मार्च १९४३ में पूना के आगाखाँ महल में गांधी जी ने अपने जीवन का चौदहवाँ—२१ दिन का—अनशन किया। अगले वर्ष अपनी कठिन बीमारी के कारण गांधीजी आगा खाँ महल की नजरबन्दी से छोड़ दिये गये। इस प्रकार १९३९ से १९४५ तक का काल हमारे देश का क्रान्ति-काल है।

इसके पहले से ही श्री जिना के नेतृत्व में मुसलिम लीग संघटित हो चुकी थी। उसने पाकिस्तान की जोरदार मांग की। १९४६ में कैबिनेट मिशन भारत में आया और अस्थायी सरकार बनाने की घोषणा हुई। लीग की हठ के कारण कांग्रेस को पाकिस्तान की मांग को स्वीकार करना पड़ा। १५ अगस्त १९४७

को भारत स्वतंत्र हो गया और लार्ड माउण्टबेटेन ने सारी सत्ता प्रधान मंत्री जवाहरलाल नेहरू को सौंप दी। सभी अंग्रेज यहाँ से चले गये और इस प्रकार दो सौ वर्षों की अंग्रेजों की भयंकर गुलामी से भारत मुक्त हुआ। यद्यपि देश का बंटवारा हो गया, परन्तु अब भारत और पाकिस्तान दोनों देशों के निवासी एक स्वतंत्र वायुमण्डल में सांस लेने लगे। स्वतंत्र भारत का विधान बनाने के लिए एक विधान-सभा भी बनी जिसने नया विधान तैयार किया। २६ जनवरी १९५० को देश ने बड़े उत्साह के साथ इस नये विधान को स्वीकार किया जिसके अनुसार अब भारत एक स्वतंत्र सार्वभौम गणतन्त्र राज्य बन गया है।

—सम्पादक

अभ्यास—

सामान्य प्रश्न—

१—भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए सबसे अधिक प्रयत्न किस संस्था ने किया ?

२—कांग्रेस की किसने और किस उद्देश से स्थापना की ?

३—स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास को कितने कालों में बाँट सकते हैं और क्यों ?

४—देश को स्वतंत्र बनाने का सबसे अधिक श्रेय किस महान् व्यक्ति को है।

शब्दाध्ययन—

१—विद्रोह और क्रान्ति में क्या अन्तर है ?

२—इन शब्दों के अर्थ बताओ और वाक्य में प्रयोग करो—
षड्यन्त्र, सत्याग्रह, बहिष्कार, असहयोग, धारा सभा

३—इस पाठ में आये अंग्रेजी और उर्दू शब्दों की सूची बनाओ।

व्याकरण—

१—सन्धि-विच्छेद करो—सत्याग्रह, बहिष्कार,

२—यूरोप से विशेषण यूरोपीय बना है, उसी तरह भारत, अफ्रीका एशिया, आस्ट्रेलिया, कनाडा से क्या विशेषण बनेंगे ?

३—वाक्य तीन तरह के होते हैं—

१. साधारण वाक्य, २. मिश्रित वाक्य, ३. संयुक्त वाक्य। व्याकरण-पुस्तक की सहायता से तीनों के उदाहरण बताओ।

रचना—

स्वतंत्रता-संग्राम का इतिहास अपने शब्दों में लिखो।

आदेश

देश के मृत और जीवित नेताओं के नामों की एक सूची बनाओ।

---

[२०]

लेखनी

[यदि इस संसार में लेखनी न होती तो पुस्तकें नहीं होतीं। पुस्तकें न होतीं तो ज्ञान-भण्डार सुरक्षित न रहता और हम अपनी प्राचीन संस्कृति और साहित्य को आज ज्यों का त्यों नहीं देख पाते। साहित्य में जो आनन्द मिलता है उसका बहुत बड़ा श्रेय उस काठ (या आज कल तो धातु) की लेखनी को ही है जो स्याही की कालिमा को भी अमृत जैसा आनन्दमय बना देती है।]

उद्भव, रीत, मनोमुकुल, हृत्तंत्री, अन्तस्तल, मर्मकथा, रसालाप

धन्य, धन्य, तू धन्य लेखनी, हे अनन्त आनन्दमयी !
हो कर भी प्राचीन प्रचुर तू बनी हुई है नित्य नयी।
जिस पुनीत क्षण में इस भव में उद्भव हुआ शुभे तेरा,
गाया पुलकित मूक प्रकृति ने, 'धन्य भाग्य मेरा मेरा'!
केवल काली स्याही पीकर अमृत-वृष्टि करती है तू,
स्वयं रीत कर और सूख कर रस के घट भरती है तू !
मनोमुकुल विकसा-विकसा कर नव नव हृदय दिखाती है,
बिना तार झंकार दिये ही हृत्तन्त्री पर गाती है।
सम्मुख लाकर रख देती है अन्तस्तल-अन्तस्तल से,
किये हुए हैं मुग्ध सभी को तू किस कौशल से बल से।
तेरे पुण्य करण-कीर्तन से हृदय द्रवित हो जाता है।
तेरा ही स्वर मर्मकथा को प्रियतम तक पहुँचाता है।
तेरे ही शुचि रसालाप में प्लावित हो जाता मन है।
जीवन है कृतकृत्य उसी का जिसको तेरा साधन है।

व्याकरण—

१—सन्धि विच्छेद करो—सत्याग्रह, परिष्कार,

२—यूरोप से विशेषण यूरोपीय बना है, इसी तरह भारत, अमरीका, एशिया, आस्ट्रेलिया, कनाडा से क्या विशेषण बनेंगे ?

३—वाक्य तीन तरह के होते हैं—

१. साधारण वाक्य, २. मिश्रित वाक्य, ३. संयुक्त वाक्य। व्याकरण-पुस्तक की सहायता से तीनों के उदाहरण बनाओ।

रचना—

स्वतंत्रता-संग्राम का इतिहास अपने शब्दों में लिखो।

आदेश

देश के मृत और जीवित नेताओं के नामों की एक सूची बनाओ।

लेखनी

[यदि इस संसार में लेखनी न होती तो पुस्तकें नहीं होती। पुस्तकें न होती तो ज्ञान-भण्डार सुरक्षित न रहता और हम अपनी प्राचीन संस्कृति और साहित्य को . आज ज्यों का त्यों नहीं देख पाते। साहित्य में जो आनन्द मिलता है उसका बहुत बड़ा श्रेय उस काठ (या आज कल तो धातु) की लेखनी को ही है जो स्याही की कालिमा को भी अमृत जैसा आनन्दमय बना देती है।]

उद्भव, रीत, मनोमुकुल, हृत्तन्त्री, अन्तस्तल, मर्मकथा, रसालाप

धन्य, धन्य, तू धन्य लेखनी, हे अनन्त आनन्दमयी !
हो कर भी प्राचीन प्रचुर तू बनी हुई है नित्य नयी।
जिस पुनीत क्षण में इस भव में उद्भव हुआ शुभे तेरा,
गाया पुलकित मूक प्रकृति ने, 'धन्य भाग्य मेरा मेरा'!
केवल काली स्याही पीकर अमृत-वृष्टि करती है तू,
स्वयं रीत कर और सूख कर रस के घट भरती है तू!
मनोमुकुल विकसा-विकसा कर नव नव दृश्य दिखाती है,
विना तार झंकार दिये ही हृत्तन्त्री पर गाती है।
सम्मुख लाकर रख देती है अन्तस्तल-अन्तस्तल से,
किये हुए हैं मुग्ध सभी को तू किस कौशल से बल से।
तेरे पुण्य करुण-कीर्तन से हृदय द्रवित हो जाता है।
तेरा ही स्वर मर्मकथा को प्रियतम तक पहुँचाता है।
तेरे ही शुचि रसालाप में प्लावित हो जाता मन है।
जीवन है कृतकृत्य उसी का जिसको तेरा साधन है।

और हमें कुछ नहीं चाहिये तुझसे हे सुभगे, वर दे,
हृदय गुहा की गूढ़ कालिमा तू तुरन्त बाहर कर दे।

—श्री सियारामशरण गुप्त

परिचय

श्री सियाराम शरण गुप्त हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ कवि और उपन्यासकार हैं। आप महाकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त के छोटे भाई हैं और बहुत दिनों से हिन्दी की मूक-सेवा करते आ रहे हैं। आप की कविता पुस्तकें दूर्वादिल, आर्द्रा, मौर्य-विजय, बापू, विषाद आदि हैं। आपकी कवितायें बड़ी भावुकतापूर्ण और मर्मस्पर्शी होती हैं और उनमें राष्ट्रीयता, और संस्कृति प्रेम स्थान-स्थान पर दिखलाई पड़ता है।

अभ्यास

सामान्य प्रश्न—

१—लेखनी को प्राचीन और साथ ही नित्य नवीन क्यों कहा गया है?
२—लेखनी काली स्याही पी कर अमृत-वर्षा कैसे करती है?
३—लेखनी से जो साहित्य रचा जाता है वह एक दूसरे के हृदयों को आपस में मिला देता है। इसी से नाटक, उपन्यास कविता आदि पढ़-देख कर सभी आनन्दित होते हैं। क्या समझते हो कि ऐसा क्यों होता है?
४—हृदय की कालिमा (पाप) बाहर व्यक्त हो जाय तो हृदय निर्मल हो जाता है। क्या लेखनी यह काम करती है?

शब्दाध्ययन—

१—इन शब्दों का अर्थ बताओ :—
हृत्तंत्री, रसालाप, मनोमुकुल।
२—इस कविता में संस्कृत के तत्सम शब्द

रस-अलंकार—

१—इस कविता में अनुप्रास अलंकार कहाँ कहाँ आया है ?

२—करुण कीर्तन से करुण रस की उत्पत्ति होती है ? प्रियतम के पास प्रेमी अपनी मर्मकथा पहुंचायेगा तो कौन रस उत्पन्न होगा ?

रचना—

इस कविता के अन्तिम पद का अर्थ समझा कर लिखो।

आदेश

प्रेमचन्द्र जी का 'कलम और तलवार' शीर्षक निबन्ध पढ़ो और फिर लेखनी के विषय में लेख लिखो।

---

[२१]

घीसा

[महाभारत की गुरु द्रोणाचार्य और दृढ़व्रती शिष्य एकलव्य की कहानी बहुत विख्यात है । परन्तु ऐसे ज्ञान-पिपासु शिष्यों की आज भी कमी नहीं है । जिन्हें अछूत या शूद्र कहा जाता है, उनमें भी मनुष्यता, बुद्धि और ज्ञान की पिपासा होती है; इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है यह सच्ची कहानी है जिसका नायक है कोरी का लड़का घीसा । श्रीमती महादेवी वर्मा प्रयाग में गंगा पार झूसी में प्रति रविवार को गाँव के लड़कों को पढ़ाने जाया करती थीं; वहीं यह बालक उन्हें मिला था जिसका चरित्र महादेवी जी ने इस कहानी में चित्रित किया है ।]

दुर्वह, आर्द्र, किसकिसाती, आदिम, अनागरिक

लड़के उससे कुछ खिचे-खिचे से रहते थे । इसलिए नहीं कि वह कोरी था वरन् इसलिए कि किसी की मां, किसी की नानी, किसी की बुआ आदि ने घीसा से दूर रहने की बात लड़कों को अच्छी तरह समझा दी थी । उसका बाप था तो कोरी, पर बड़ा ही अभिमानी और भला आदमी बनने का इच्छुक । डलिया आदि बुनने का काम छोड़ कर वह थोड़ी बढ़ईगिरी सीख आया और गाँव के चौखट-किवाड़ बनाकर और ठाकुरों के घरों में सफेदी करके उसने कुछ ठाट-बाट से रहना आरम्भ किया; तभी अचानक हैजे के बहाने वह वहाँ बुला लिया गया जहाँ न जाने का बहाना न उसकी बुद्धि सोच सकी न अभिमान । पर उसकी स्त्री भी कम गर्वीली न थी । उसने जब दूसरी शादी न की और चाल खोलकर, चूड़ियाँ फोड़ कर, बिना किनारे की धोती पहन कर उसने बड़े घर की विधवा का जीवन बिताना शुरू किया तब तो

सारा समाज क्षोभ के समुद्र में डूबने-उतराने लगा । उस पर घीसा बाप के मरने के ६ महीने बाद पैदा हुआ था। इसी कथा को गाँव वालों ने अनेक क्षेपकोमय विस्तार के साथ सुनायी, पर मेरा मन उसकी ओर से न फिरा । इसके विपरीत इससे घीसा मेरे और निकट आ गया ।

पढने, सबसे पहले समझने, उसे व्यवहार के समय स्मरण रखने, पुस्तक में एक भी धब्बा न लगाने, स्लेट को चमचमाती रखने और अपने छोटे से छोटे काम का उत्तरदायित्व बडी गम्भीरता से निभाने मे उसके समान कोई चतुर न था। इसीसे कभी-कभी मन चाहता था कि उसकी माँ से उसे माँग ले जाऊ और अपने पास रख कर उसके विकास की उचित व्यवस्था कर दूँ पर उस उपेक्षिता मगर मानिनी विधवा का वही एक सहारा था। उस बालक के बिना उसका जीवन कितना दुर्वह हो सकता है, यह भी मुझसे छिपा न था। फिर नौ साल के कर्तव्य परायण घीसा की गुरु भक्ति देखकर उसकी मातृ भक्ति के सम्बन्ध मे कुछ सदेह करने का स्थान नहीं रह जाता था।

शनिचर के दिन ही वह अपने छोटे दुर्बल हाथो से पीपल की छाया को गोबर-मिट्टी से पीला चिकना कर जाता था। फिर इतवार को माँ के मजदूरी पर जाते ही एक मैले फटे कपडे मे बँधी मोटी रोटी और कुछ नमक या थोडा चबना और एक डली गुड बगल मे दबा कर, पीपल की छाया को एक बार फिर झाडने-बुहारने के पश्चात् वह गगा के तट पर आ बैठता और अपनी पीली सतेज आँखों पर क्षीण साँवले हाथ की छाया कर दूर दूर तक दृष्टि को दौड़ाता रहता। जैसे ही उसे मेरी नीली सफेद नाव की झलक दिखलाई पडता, वह अपनी पतली टाँगो पर तीर के समान उडता और बिना नाम लिए हुए ही साथियो को सुनाने के लिए 'गुरु साहब' कहता हुआ फिर पेड के नीचे पहुँच जाता। पेड की नीची डाल पर रखी हुई मेरी शीतलपाटी

बालकों के सामने बरसात में चूते हुए घर में आठ पृष्ठ की पुस्तक बचा रखने का प्रश्न था और कुछ कागजों के अकारण द्रोही चूहों की समस्या का समाधान चाहते थे। ऐसा महत्वपूर्ण कोलाहल में घीसा न जाने कैसे अलग रहना अनावश्यक समझ लेता था, अतः सदा के समान आज भी मैं उसे न खोज पायी। जब मैं कुछ चिन्तित सी वहाँ से चली तब मन भारी-भारी हो रहा था। कब लौटूंगी या नहीं लौटूंगी, यही सोचते हुए मैं ने फिर कर चारों ओर आर्द्र दृष्टि डाली। कछार को बालू में दूर तक फैले तरबूज के खेत अपने सिरकी और फूस का मुठियों, टट्टियों और रखवाली के लिए बनी झोपड़ियों के कारण जल में बसे किसी आदिम द्वीप का स्मरण दिलाते थे। उनमें दो एक दिये जल चुके थे, तब मैं ने दूर पर एक काला धब्बा आगे बढ़ता देखा। वह घीसा ही होगा, यह मैं ने दूर से ही जान लिया। आज गुरु साहब को उसे विदा देनी है यह उसका नन्हा हृदय जान रहा था, इसमें सन्देह नहीं था। परन्तु उस उपेक्षित के मन में मेरे लिए कितनी सरल ममता और मेरे विछोह की कितनी गहरी व्यथा हो सकती है, यह जानना मेरे लिए शेष था।

निकट आने पर देखा कि घीसा एक बड़ा तरबूज दोनों हाथों में सभाले था। घीसा के पास न पैसा था न खेत—तब क्या वह इसे चुरा लाया है! मन का सन्देह बाहर आया ही। घीसा गुरु से झूठ बोलना भगवान जी से झूठ बोलना समझता है। वह तरबूज कई दिन पहले देख आया था। माई के लौटने में न जाने क्यों देर हो गयी तब उसे अकेले ही खेत पर जाना पड़ा। वहाँ खेत वाले का लड़का था जिसकी घीसा के नये कुरते पर बहुत दिन से नजर थी। उसने कहा—पैसा नहीं है तो कुरता दे जाओ। और वह कुरता दे आया—पर गुरु साहब को चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि गर्मी में वह कुरता

पहनता ही नहीं और आने जाने के लिए पुराना ठीक रहेगा।

गुरु साहब तरबूज न लें तो घीसा रात भर रोयेगा, छुट्टी भर रोयेगा, ले जावें तो वह रोज नहा-धो कर पेड़ के नीचे पड़ा हुआ पाठ दोहराता रहेगा और छुट्टी के बाद पूरी किताब पट्टी पर लिख कर दिखा सकेगा।

और तब उस बालक के सिर पर हाथ रख कर मैं भावातिरेक से ही निश्चल हो रही। उस तट पर किसी गुरु को किसी शिष्य से कभी ऐसी दक्षिणा मिली होगी ऐसा मुझे विश्वास नहीं, परन्तु उस दक्षिणा के सामने संसार में अब तक के सारे आदान-प्रदान फीके जान पड़े।

फिर घीसा के सुख का विशेष प्रबन्ध कर मैं बाहर चली गयी और लौटते-लौटते कई महीने लग गये। इस बीच उसका कोई समाचार मिलना असम्भव था। जब फिर उस ओर जाने का मुझे अवकाश मिल सका तो पता लगा कि घीसा को उसके भगवान जी ने सदा के लिए पढ़ने से अवकाश देकर अपने पास बुला लिया था।

परिचय

यह सस्मरण श्रीमती महादेवी वर्मा के 'अतीत के चलचित्र' से लिया गया है। देवी जी हिन्दी के वर्तमान सर्वश्रेष्ठ कवियों में से हैं। इन्हें आधुनिक युग की मीरा कहा जाता है। भावों की जो गहराई और अनुभूतियों की जो सच्चाई आप की कविताओं में मिलती है वह अन्यत्र नहीं मिलती। आध्यात्मिक प्रेम की आकुलता और छटपटाहट मीराबाई की भाँति इनकी कविता में भी सर्वत्र दिखलाई पड़ती है। आप बहुत अच्छी लेखिका भी है। 'अतीत के चल चित्र' और 'स्मृति की रेखायें' आप की सस्मरणात्मक कहानियों के सग्रह है। आप की कविता पुस्तकें हैं, रश्मि, नीहार, नीरजा, सान्ध्यगीत, और यामा। इस समय प्रयाग महिला विद्यापीठ की आचार्या है। दुखियों गरीबों और साहित्यिकों की

उतार कर झाड़-पोंछ कर बिछायी जाती, दावात और कलम पेड़ के कोटर से निकाल कर यथास्थान रख दी जाती।

मुझे आज भी वह वह दिन नहीं भूलता जब मैं ने बिना कपड़ों का प्रबन्ध किये ही उन विचारों को सफाई का महत्व समझाते-समझाते थका डालने की मूर्खता की। दूसरे इतवार को सब जैसे के तैसे ही सामने थे, केवल गंगाजी में मुँह इस तरह धो आये थे कि मैल की अनेक रेखाएँ विभक्त हो गयी थीं; कुछ ने हाथ पाँव ऐसे घिसे थे कि शेष मलिन शरीर के साथ वे अलग से जोड़े हुए लगते थे। पर घीसा गायब था। पूछने पर लड़के काना-फूसी करने या एक साथ सभी उसकी अनुपस्थिति का कारण सुनाने को आतुर होने लगे। एक-एक शब्द जोड़-जोड़ कर समझना पड़ा कि घीसा मां से कपड़ा धोने के साबुन के लिए कभी से कह रहा था; मां को मजदूरी के पैसे मिले नहीं थे—कल रात को मिले और रात को वह सब काम छोड़ कर पहले साबुन लेने गयी। अभी लौटी है; अतः घीसा कपड़े धो रहा है क्योंकि गुरु साहब ने कहा था कि नहा धोकर साफ कपड़े पहन कर आना। और अभागे के पास कपड़े ही क्या थे? किसी दयावती का दिया हुआ एक पुराना कुरता जिसकी एक आस्तीन आधी थी, और एक अँगौछा जैसा फटा टुकड़ा। जब घीसा नहा कर गीला अँगौछा लपेटे और आधा भीगा कुरता पहने अपराधी के समान मेरे सामने आ खड़ा हुआ तब मेरी आँखें ही नहीं, मेरा रोम-रोम गीला हो गया। उस समय समझ में आया कि द्रोणाचार्य ने अपने भील शिष्य से अंगूठा कैसे कटवा लिया था।

एक दिन न जाने क्या सोच कर मैं उन विद्यार्थियों के लिए ५-६ सेर जलेबियाँ ले गयी पर कुछ तोलने वाले की हाथ की सफाई से, कुछ तुलवाने वाले की समझदारी से और कुछ वहाँ की छीना-झपटी के कारण प्रत्येक को पाँच से अधिक न मिल

सकीं। एक कहता था मुझे कम मिलीं, दूसरे ने बताया मेरी अमुक ने छीन ली, तीसरे को घर में सोते हुए छोटे भाई के लिए चाहिए, चौथे को किसी और की याद आ गयी। पर इस कोलाहल में अपने हिस्से की जलेबियाँ लेकर घीसा कहाँ खिसक गया यह कोई न जान सका। घीसा लौटा तो मालूम हुआ, उसका सब हिसाब ठीक था—वह दो जलेबियाँ माई के लिए छप्पर में खोंस आया है, एक अपने पाले हुए, बिना माँ के कुत्ते के पिल्ले को खिला दी और दो स्वयं खा ली। "और चाहिये" पूछने पर उसकी संकोच भरी आँखें झुक गयी— ओठ कुछ हिले। पता चला की पिल्ले को उससे कम मिली हैं। दे तो गुरु साहब पिल्ले को ही एक और दे दें।

होली के आस-पास घीसा बीमार पड़ गया था। दो सप्ताह तक ज्वर में पड़ा रहा। जब वह अच्छा हो गया तो धूल और सूखी पत्तियों को बाँध कर उन्मत्त के समान घूमने वाली गर्मी की हवा से उसका राज संग्राम छिड़ने लगा। झाड़ते ही वह पाठशाला धूल-धूसरित हो कर भूरे, पीले और कुछ हरे पत्तों की चादर में छिप कर उस बालक को चिढ़ाने लगता। तब मैंने तीसरे पहर से सन्ध्या समय तक वहाँ रहने का निश्चय किया परन्तु पता चला कि घीसा किसकिसाती आँखों को मलता और पुस्तक से बार-बार धूल झाड़ता हुआ दिन भर वहीं पेड़ के नीचे बैठा रहता है मानो वह किसी प्राचीन युग का तपोव्रती अनागरिक ब्रह्मचारी हो जिसकी तपस्या भंग करने के लिए ही लू के झोंके आते हैं।

उन दिनो डाक्टरों को मेरे पेट में फोड़ा होने का सन्देह हो रहा था—आपरेशन की सम्भावना थी। अतः मैंने गर्मी में बाहर जाने का अपने निश्चय लड़कों बता दिया। कुछ बालक उदास थे और कुछ खेलने की छुट्टी से प्रसन्न। कुछ

बालकों के सामने बरसात में चूते हुए घर में आठ प्रष्ठ की पुस्तक बचा रखने का प्रश्न था और कुछ कागजों के अकारण टोही गूढ़ों की समस्या का समाधान चाहते थे। ऐसा महत्वपूर्ण कालाहन्त में घीसा न जाने कैसे अपना रहना अनावश्यक समझ लेता था, अतः सदा के समान आज भी मैं उसे न खोज पायी। जब मैं कुछ चिन्तित सी वहाँ से चली तब मन भारी-भारी हो रहा था। कब लौटूंगी या नहीं लौटूंगी, यही सोचते हुए मैं ने फिर कर चारों ओर आर्द्र दृष्टि डाला। कछार की बालू में दूर तक फैले तरबूज के खेत अपने सिरकी और फूस का मुठियों, टट्टियों और रखवाली के लिए बनी झोपड़ियों के कारण जल में बसे किसी आदिम द्वीप का स्मरण दिलाते थे। उनमें दो एक दिये जल चुके थे, तब मैं ने दूर पर एक काला धब्बा आगे बढ़ता देखा। वह घीसा ही होगा, यह मैं ने दूर से ही जान लिया। आज गुरु साहब को उसे बिदा देनी है यह उसका नन्हा हृदय जान रहा था, इसमें सन्देह नहीं था। परन्तु उस उपेक्षित के मन में मेरे लिए कितनी सरल ममता और मेरे विछोह की कितनी गहरी व्यथा हो सकती है, यह जानना मेरे लिए शेष था।

निकट आने पर देखा कि घीसा एक बड़ा तरबूज दोनों हाथों से सभाले था। घीसा के पास न पैसा था न खेत—तब क्या वह इसे चुरा लाया है! मन का सन्देह बाहर आया ही। घीसा गुरु से झूठ बोलना भगवान जी से झूठ बोलना समझता है। वह तरबूज कई दिन पहले देख आया था। माई के लौटने में न जाने क्यों देर हो गयी तब उसे अकेले ही खेत पर जाना पड़ा। वहाँ खेत वाले का लड़का था जिसकी घीसा के नये कुरते पर बहुत दिन से नजर थी। उसने कहा—पैसा नहीं है तो कुरता दे जाओ। और वह कुरता दे आया—पर गुरु साहब को चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि गर्मी में वह कुरता

पहनता ही नहीं और आने जाने के लिए पुराना ठीक रहेगा।

गुरु साहब तरबूज न लें तो घीसा रात भर रोयेगा, छुट्टी भर रोयेगा, ले जावें तो वह रोज नहा-धो कर पेड़ के नीचे पड़ा हुआ पाठ दोहराता रहेगा और छुट्टी के बाद पूरी किताब पट्टी पर लिख कर दिखा सकेगा।

और तब उस बालक के सिर पर हाथ रख कर मैं भावातिरेक से ही निश्चल हो रही। उस तट पर किसी गुरु को किसी शिष्य से कभी ऐसी दक्षिणा मिली होगी ऐसा मुझे विश्वास नहीं, परन्तु उस दक्षिणा के सामने संसार में अब तक के सारे आदान-प्रदान फीके जान पड़े।

फिर घीसा के सुख का विशेष प्रबन्ध कर मैं बाहर चली गयी और लौटते-लौटते कई महीने लग गये। इस बीच उसका कोई समाचार मिलना असम्भव था। जब फिर उस ओर जाने का मुझे अवकाश मिल सका तो पता लगा कि 'घीसा को उसके भगवान जी ने सदा के लिए पढ़ने से अवकाश देकर अपने पास बुला लिया था।

परिचय

यह संस्मरण श्रीमती महादेवी वर्मा के 'अतीत के चल चित्र' से लिया गया है। देवी जी हिन्दी के वर्तमान सर्वश्रेष्ठ कवियों में से हैं। इन्हें आधुनिक युग की मीरा कहा जाता है। भावों की जो गहराई और अनुभूतियों की जो सच्चाई आप की कविताओं में मिलती है वह अन्यत्र नहीं मिलती। आध्यात्मिक प्रेम की आकुलता और छटपटाहट मीराबाई की भांति इनकी कविता में भी सर्वत्र दिखलाई पड़ती है। आप बहुत अच्छी लेखिका भी हैं। 'अतीत के चल चित्र' और 'स्मृति की रेखायें' आप की संस्मरणात्मक कहानियों के संग्रह हैं। आप की कविता पुस्तकें हैं, रश्मि, नीहार, नीरजा, सांध्यगीत, और यामा। इस समय प्रयाग महिला विद्यापीठ की आचार्या हैं। दुखियों गरीबों और साहित्यिकों की

सेवा के लिए प्रस्तुत रहती हैं। आपने 'साहित्यकार संसद' नामक एक संस्था की भी स्थापना की है।

अभ्यास

सामान्य प्रश्न—

१—गाँव वाले घीसा को उपेक्षा की दृष्टि से क्यों देखते थे ?

२—उसके चरित्र की क्या विशेषतायें थीं ?

३—गुरु द्रोणाचार्य और एकलव्य की कथा क्या है ?

४—इस कहानी से क्या निष्कर्ष निकलता है ?

शब्दाध्ययन—

१—अर्थ बताओ—चेतकोमल[1] विस्तार, धूल धूसरित, उपेक्षिता पर मानिनी, अकारण द्रोही।

२—इस कहानी की भाषा-शैली के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करो।

३—प्रेमचन्द की भाषा से इसकी भाषा की तुलना करो।

व्याकरण—

वाक्य विश्लेषण करो—

शनिवार के दिन ही वह अपने छोटे दुर्बल हाथों से पीपल की छाया को गोबर मिट्टी से पीला चिकना कर जाता था।

रचना—

१—सन्दर्भ सहित व्याख्या लिखो—

धूल और सूखी पत्तियों को बाँधकर
चिढ़ाने लगती।

२—अपने विद्यालय की कुछ ऐसी ही घटनाओं और साथियों के संस्मरण लिखो।

आदेश

घीसा की भाँति अपने गुरुओं के आदेशों का पालन करो और उनके प्रति अपने मन में श्रद्धाभाव रखो।

[२२]

सौर मण्डल

[जिस पृथ्वी पर हम रहते हैं उसकी उत्पत्ति कैसे हुई या यह पृथ्वी जिस आकाश में है, असीम है या सीमित, उस आकाश में और क्या क्या वस्तुयें हैं और वे कब, कैसे उत्पन्न हुई थीं, इन बातों की ओर हम बहुत ही कम ध्यान देते हैं। किन्तु वैज्ञानिकों ने इनमें से बहुत से प्रश्नों का हल ढूंढ लिया है। और अभी नयी-नयी बातों का पता लगाते ही चले जा रहे हैं। इस पाठ में इन्हीं प्रश्नों में से एक प्रश्न—पृथ्वी और सूर्य के सम्बन्ध, अनन्त आकाश में सूर्य और उसके परिवार के ग्रहों के स्थान आदि के बारे में विचार किया गया है।]

नीहारिका, उपग्रह, खगोल, पिण्ड, कुण्डली, ब्रह्माण्ड, कक्षा।

आकाश में रात्रि में हम जितने पिण्डों को देखते हैं, बहुधा लोग इन सब को तारे या नक्षत्र कहा करते हैं। परन्तु खगोल विद्या के पण्डितों ने इन प्रकाश पिण्डों को दो तरह का माना है। इनमें से कुछ तो ग्रह हैं और चारों ओर चक्कर लगाते रहते हैं। सूर्य इन सब का शासक है अर्थात् सूर्य की आकर्षण शक्ति के कारण ही ये ग्रह उसके चारों ओर घूमते रहते हैं। यह पृथ्वी भी ऐसा ही एक ग्रह है। इन ग्रहों की संख्या नौ मानी गयी है। और उनके नाम ये हैं—बुध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल, बृहस्पति, शनि, यूरेनस, नेपच्यून और प्लुटो। हिन्दी में यूरेनस को वरुण, नेपच्यून को वारुणी और प्लुटो को यम कहते हैं परन्तु ये प्राचीन नाम नहीं हैं। भारतीय ज्योतिषियों ने चन्द्रमा, राहु और केतु को भी ग्रह माना था, जब कि ये ग्रह नहीं उपग्रह मात्र हैं। इन ग्रहों में से बुध और शुक्र को छोड़ कर बाकी सभी ग्रहों के चारों ओर भी

कुछ पिण्ड चक्कर करते हैं, उन्हें ही उपग्रह कहते हैं, जैसे चाँद पृथ्वी का उपग्रह है।

सूर्य देखने में थाली के आकार का मालूम पड़ता है और ग्रह, उपग्रह या आकाश के नक्षत्र बहुत दूर पर रखे हुए दीपक की भांति मालूम पड़ते हैं। पर वास्तव में ऐसी बात नहीं है। सूर्य बहुत बड़ा है—अनुमानतः उसका आकार पृथ्वी से तेरह लाख गुना बड़ा है। उनमें से कई तो सूर्य से हजार गुना बड़े हैं। चंद्रमा भी देखने में सूर्य के बराबर ही मालूम पड़ता है परन्तु वस्तुतः वह पृथ्वी से भी छोटा है। यदि ऐसे-ऐसे ८१ चाँद एक साथ इकट्ठे हों तब वे पृथ्वी के बराबर हो सकते हैं।

सूर्य पृथ्वी से बहुत दूरी पर है और तारे तो और भी अधिक दूरी पर हैं। तभी तो सूर्य से बड़ा होने पर भी वे प्रकाश के बिन्दु की तरह ही दीखते हैं। और अनेक तो ऐसे हैं जो बिना दूरबीन के दिखाई ही नहीं पड़ते। मोटे हिसाब से सूर्य पृथ्वी से ९ करोड़ ३० लाख मील दूर है। नक्षत्र तो इतनी दूर हैं कि उनकी दूरी मीलों में बताना वैसा ही हास्यास्पद होगा जैसे लन्दन और दिल्ली के बीच की दूरी गज या इंचों में बताना। इसके लिए माप के एक नए ढंग का प्रयोग किया जाता है। प्रकाश प्रति सेकेंड एक लाख छियासी हजार मील चलता है; इस गति से प्रकाश को सूर्य से पृथ्वी तक आने में आठ मिनट लगते हैं। पृथ्वी से जो नक्षत्र सबसे निकट हैं, उस से पृथ्वी पर पहुंचने में प्रकाश को करीब ४३ वर्ष की यात्रा करनी पड़ती है। अनेक नक्षत्रों से तो प्रकाश अभी पृथ्वी तक पहुंचा ही नहीं। इसी से अनुमान लगाया जा सकता है कि आकाश अनन्त, असीम और अथाह है। इसी शून्य अनन्त आकाश में असंख्य तारे और उनके ग्रह-उपग्रह चक्कर काटते रहते हैं।

अब यह प्रश्न स्वभावतः उपस्थित होता है कि इस सृष्टि की या और नहीं तो हमारे सौर मण्डल की ही उत्पत्ति कैसे हुई? दूरबीन

के सहारे जब हम आकाश को देखते हैं तो तारों के अतिरिक्त एक और तरह के पिण्ड भी दिखलाई पड़ते हैं जो तारों की तरह बिन्दु के आकार के नहीं हैं बल्कि फैले हुए ज्योति-समूह
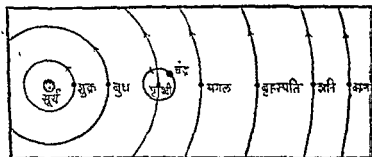
सूर्य से ग्रहों की दूरी क्रम
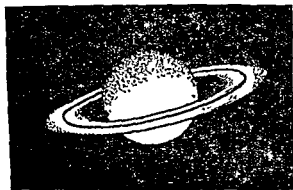
शनि

की तरह लगते हैं। उनमें से किसी-किसी का आकार कुंडली का सा है जिसके चारों ओर असंख्य नन्हें-नन्हें तारे भी दीखते

हैं। इस समूह को नीहारिका कहते हैं। जिसे हम आकाशगंगा कहते हैं, वह भी एक विशाल नीहारिका ही है। आकाश में ऐसी असंख्य नीहारिकायें हैं। यह भी हो सकता है, कि ये नीहारिकायें हमारे सौरमण्डल की तरह सूर्यों, ग्रहों, उपग्रहों आदि का समूह हों। ये नीहारिकायें या आकाशगंगायें असंख्य विश्व हैं। इस तरह आकाश अनन्त देश है। इस अनन्त देश में अनन्त विश्व हैं। प्रत्येक में असंख्य ब्रह्माण्ड हैं। प्रत्येक ब्रह्माण्ड का नायक कोई सूर्य होता है। हमारा ब्रह्माण्ड यह सौर मण्डल है जिसके नायक भगवान भास्कर हैं।

कुछ लोगों का अनुमान है कि हमारा सूर्य और उसके ग्रह-उपग्रह एक नीहारिका से बने हैं। वह नीहारिका बहुत ही बड़ी थी जिसका व्यास कई करोड़ मील लम्बा था। वह आकाश में जलती और घूमती रहती थी। धीरे-धीरे वह ठंढी होने लगी। ऐसा होते समय एक कुंडली या गाड़ी के पहिये जैसा चक्र उसमें से अलग हो गया और उस नीहारिका की परिक्रमा करने लगा। फिर कुछ समय के बाद एक दूसरा चक्र निकल कर परिक्रमा करने लगा। इस प्रकार नौ चक्र निकले। ये ठंढे होकर सिमटने लगे और नवग्रह बन गये। फिर ग्रहों में से भी वैसी ही क्रिया होने लगी तो इस तरह उपग्रह बन गये। नीहारिका का मध्यभाग जो बच गया वह अब तक इतने जोर से जल रहा है कि वहाँ कोई ठोस चीज रह ही नहीं सकती। वही सूर्य है। एक दूसरे विद्वान जेफ़रीस का मत है कि सूर्य पहले इससे भी बड़ा था; अकस्मात् कोई तारा उससे लड़ गया। परिणाम स्वरूप दोनों के कुछ भाग टूट गये, उनमें से कुछ तो सूर्य के आकर्षण से उसके चारों ओर घूमने लगे और कुछ उस दूसरे तारे के चक्कर में आ गये। यही टुकड़े ग्रह कहलाये।

सूर्य के जितने ग्रह हैं उनमें सबसे दूर रहने वाले दो वरुण

और यम को छोड़ कर शेष सभो एक ही दिशा में अपनी धुरी पर और अपनी कक्षा पर सूर्य की परिक्रमा करते हैं। सूर्य के सबसे निकट का ग्रह बुध है। पृथ्वी से चौगुनी गर्मी बुध में पड़ती है। यह इतना छोटा ग्रह है कि वृहस्पति-शनि के कई उपग्रह इससे बड़े हैं। सन्ध्या समय यह केवल एक घंटे के लिए उगता है। इसकी गति इतनी तेज़ है कि यह ढाई महीने में ही सूर्य के चारों ओर घूम आता है। बुध के बाद दूसरा ग्रह शुक्र है जो कुछ लाल रंग का होता है। इसका प्रकाश बड़ा तेज होता है। आकार मे यह पृथ्वी से थोड़ा कम है। तीसरा स्थान पृथ्वी का है जिसके बारे में भूगोल के विद्यार्थी बहुत कुछ जानते हैं। सूर्य से दूरी मे चौथा स्थान मंगल का है। यह पृथ्वी से बहुत छोटा है और यह पहले ठंडा हुआ होगा जिससे इसमें सर्दी बहुत पड़ती है। ज्योतिषियों का अनुमान है कि मंगल ग्रह मे मनुष्य रहते हैं जो पृथ्वी के मनुष्य से अरबों बरस पहले ही सभ्य हो चुके हैं। लोग उसमें नहरें आदि होने का भी अनुमान करते हैं।

पाँचवाँ ग्रह वृहस्पति है जो अन्य सभी ग्रहों के जोड़ से भी बड़ा है। यह ठोस नहीं है क्योंकि बड़ा होने के कारण अभी यह ठंढा नहीं हो सका है। पृथ्वी के साथ तो केवल एक उपग्रह चाँद है पर वृहस्पति के नौ उपग्रह हैं। छठाँ ग्रह शनिचर है। यह अपनी कक्षा पर लगभग साढ़े उन्तीस वर्ष में एक चक्कर पूरा करता है। इसका घनत्व पानी मे भी हलका है। इसके भी नौ उपग्रह है। सातवाँ ग्रह युरेनस या वारुणी है जो पृथ्वी से ६४ गुना बड़ा है। अन्तिम दो ग्रह नेपच्यून या वरुण और प्लुटो या यम हैं। इन तीनों ही ग्रहों का पता अभी कुछ ही दिनों पूर्व लगा है। इन सब ग्रहों की पहचान यह है कि इनमें चन्द्रमा की तरह कलाएँ होती हैं; नक्षत्र घटते बढ़ते नहीं, पर ये घटते बढ़ते हैं। ग्रहों का प्रकाश कुछ पीला और लाल होता है और

तारों का प्रकाश सफेद। यहाँ की एक दूसरे से दूरी बदलती भी नहीं। ... दूरबीन से देखने पर ग्रह कुछ बड़े और सफेद दिखाई देते हैं जब कि तारों के आकार में कुछ परिवर्तन नहीं होता। तारों की गति सदा एक सी रहती है पर ग्रह कभी आगे कभी पीछे चलते हैं और कभी स्थिर रहते हैं।

ज्योतिषियों का अनुमान है कि सौर परिवार की आयु दस अरब और सात अरब साल के बीच में है। किन्तु यह अनुमान मात्र ही है। कितने दिनों तक सूर्य का यह परिवार अपने जीवन को बनाये रहेगा, यह निश्चित रूप से कहना किसी के लिए भी कठिन है। फिर भी इतना तो निश्चित है कि पृथ्वी पर प्रलय कभी न कभी अवश्य आयेगा। बात यह है कि पृथ्वी के प्राणियों को जीवित रखने वाला सूर्य धीरे धीरे अपनी गर्मी को खो रहा है। जिस दिन वह पूर्ण शीतल हो जायगा, उस दिन से पृथ्वी पर प्रकाश और गर्मी का आना बन्द हो जायगा। पृथ्वी पर पानी, खून सब कुछ जम जायगा। वही प्रलय का दिन होगा। वह भयंकर काण्ड उपस्थित तो अवश्य होगा पर अभी नहीं, करोड़ों वर्ष बाद।

—सम्पादक

अभ्यास

सामान्य प्रश्न—

१—ग्रह और नक्षत्रों में क्या अन्तर है? दोनों की पहिचान क्या है?

२—ग्रह कितने हैं? उनकी उत्पत्ति कैसे हुई थी?

३—नीहारिका से क्या समझते हो। सौर मण्डल की उत्पत्ति कैसे हुई?

४—उपग्रह किसे कहते हैं? ये कैसे बने?

शब्दाध्ययन—

१—'ग्रह' का शाब्दिक अर्थ क्या है? ग्रहण, ग्राह, ग्राह्य का भी अर्थ बताओ।

२—अनन्त, असीम और अथाह शब्दों में क्या अन्तर है ?

३—करोड़ का तत्सम रूप कोटि है ? लाख, अरब, सौ, बीस के तत्सम रूप बताओ।

४—इन शब्दों के पर्यायवाची शब्द बताओ—प्रकाश, सूर्य, चद्रमा पृथ्वी।

व्याकरण—

१—समास बताओ—प्रकाश-पिण्ड, शनिचर, नवग्रह, आकाश गङ्गा।

२—वाक्य विग्रह करो—"आकाश म रात्रि में हम जितने पिण्डों को देखते हैं, बहुधा लोग इन सब को नक्षत्र या तारे कहा करते हैं।"

रचना—

'सौर मण्डल' के सम्बन्ध में एक निबन्ध लिखो।

आदेश

सौर मण्डल के ग्रहों का सूर्य से दूरी के क्रम से स्थान दिखाते हुए एक मान चित्र बनाओ।

———

खुला आसमान

[अति सब की बुरी है चाहे यह बरसात की सुहावनी ऋतु ही क्यों न हो। लगातार बदली से भी जी ऊब जाता है। काम काज ठप रहता है। घरों में बड़े-बूढ़े शरीर के जोड़ों में जैसे मुर्चा लग जाता है। इसीलिये लम्बी बदली के बाद जब धूप निकलती है तो गाँव-घर में चहल पहल दिखायी पड़ने लगती है। सब जगह उल्लास की लहर छा जाती है। लोग खुशी-खुशी अपना काम करने निकल पड़ते हैं। इन पंक्तियों में कवि ने ऐसे ही वातावरण का चित्रण किया है।]

आसमान, जहान

बहुत दिनों बाद खुला आसमान!
निकली है धूप, हुआ खुश जहान!
दिखीं दिशाएं, झलके पेड़
चरने को चले ढोर—गाय भैंस भेड़,
खेलने लगे लड़के छेड़ छेड़,
लड़कियाँ घरों को कर आसमान!
लोग गाँव-गाँव को चले,
कोई बाजार, कोई बरगद के पेड़ के तले
जाँघिया-लंगोटा ले सँभले
तगड़े,तगड़े सीधे नौजवान!
पनघट पर बड़ी भीड़ हो रही,
नहीं ख्याल आज कि भीगेगी चूनरी,
बातें करती हैं वे सब खड़ी
चलते हैं नयनों के सधे बाण—

परिचय

हिन्दी के जीवित कवियों में महाकवि निराला का स्थान बहुत ही ऊँचा है। खड़ी बोली की कविता को नयी दिशा में मोड़ने, उसे शक्ति, ओज और माधुर्य देने वालों में से वे सबसे आगे रहे हैं। यदि उन्होंने कठिन और दुरूह रहस्यवादी कवितायें लिखी हैं तो बोलचाल की भाषा और मुक्त छन्दों में प्रगतिवादी कवितायें और व्यंग- काव्य भी लिखे हैं। 'परिमल' 'अनामिका' 'गीतिका' 'तुलसीदास', 'कुकुर-मुत्ता', 'नये पत्ते', 'बेला' आदि उनकी काव्य-पुस्तकें हैं। उन्होंने उपन्यास, कहानियाँ और निबन्ध भी लिखे हैं। इस समय प्रयाग में रहते हैं।

अभ्यास

सामान्य प्रश्न—

१ | आसमान खुलने पर गाँव में चहल-पहल क्यों है !

२—पनघट पर भीड़ क्यों है ? क्या बदली में ऐसी भीड़ नहीं रहती !

शब्दाध्ययन—

१—इस कविता में कवि ने सरल भाषा का प्रयोग क्यों किया है ? यह भाषा ग्रामीण वातावरण के चित्रण के लिए कहाँ तक उपयुक्त है ?

२—इस कविता में प्रयुक्त ग्रामीण तथा उर्दू शब्दों को छाँटो।

रचना—

१—'दिखीं दिशायें, झलके पेड़' का भाव समझाओ।

२—बदली छँटने पर गाँव का वातावरण जैसा हो जाता है, उसे विस्तार पूर्वक अपनी भाषा में लिखो।

आदेश

प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण करो।

नाम

[कुछ ऐसे छोटे-छोटे विषय हैं, जिनके निकट रहते हुए भी हमारा ध्यान उन पर लिखने की ओर नहीं जाता। नाम भी ऐसा ही विषय है। ऐसे निबंधों में विषय से अधिक लेखक का व्यक्तित्व उभर कर आता है। उसमें लेखक की व्यक्तिगत रुचि या स्पष्ट संकेत रहता है। इस प्रकार के निबंध 'व्यक्ति-व्यंजक' निबंध कहलाते हैं। इसमें लेखक ने सुखद निर्जीपन के साथ नामकरण पर विचार किया है।]

पद्म, दिवंगत, अनुरक्ति, विरक्ति, छद्म, असहिष्णुता

कुछ दिनों पहले की बात है, लखनऊ से एक सज्जन मुझसे मिलने आये। बातचीत में उन्होंने मुझसे कहा कि उन्हें मेरे नाम पर कुछ आपत्ति है। उनके कहने का अभिप्राय यह था कि यदि मैं 'पद्म' कर दूँ तो अच्छा होगा। मेरे पिता हिन्दी और संस्कृत दोनों भाषाओं के पण्डित थे। मेरी माता भी हिन्दी भाषा का अच्छा ज्ञान रखती थीं। यह तो सम्भव नहीं कि उन्हें पद्म शब्द का ज्ञान नहीं था, परन्तु तो भी नाम-बूझकर उन्होंने किस भाव से प्रेरित होकर मुझे यह नाम दिया, यह वही जानें। अब न मेरी माता हैं न मेरे पिता। दोनों दिवंगत हो गये हैं। उनसे तो मैं पूछ नहीं सकता, परन्तु यह सच सच है कि मैं स्वयं पदुम से अब पद्म नहीं बनना चाहता। मैं तो जीवन भर पदुम ही बना रहूंगा।

अन्य नामों के प्रति मुझे जरा भी अनुरक्ति नहीं है। यह सच है कि कितने ही लोगों ने अपने पुत्रों के बड़े ही सुन्दर नाम रखे हैं। मेरे एक छात्र का नाम है, 'विक्टर चन्द्रादित्य'। उन्हें यह

नाम खूब शोभा देता है, परन्तु कोई कहे कि तुम अपना यह भद्दा नाम छोड़ कर विक्टर चन्द्रादित्य या प्रतापादित्य या विक्रमादित्य या ऐसा ही कोई दूसरा गौरवशाली नाम रख लो तो मैं उसे कभी स्वीकार नहीं करूगा। पद्मकान्त, कमलाकान्त या कमलाकर आदि नाम ऐसे ही हैं कि मुझे ऐसा जान पड़ता है कि उनमें से एक नाम को भा स्वीकार कर लेने पर उक्त नाम के गौरव-भार से मेरा सारा जीवन ही दब जायगा। मैं साँस तक नहीं ले सकूँगा। मुझे तो यही अनुभव होगा कि सारा संसार मेरी ओर ताक रहा है और कहाँ जाकर मैं अपना मुँह छिपाऊं। इसलिये मैं जो हूँ वही रहूँगा। जीवन भर के कितने प्रकार के सुख-दुखो का अनुभव कर, यश-अपयश का पात्र बन, प्रशंसा और धिक्कार को सुनकर अब मैं ऐसा बन गया हूँ कि पद्म का लावण्य मेरे जीवन रूपी काले कम्बल मे रत्न की सी चमक लाकर मुझे सभी लोगों का उपहास-पात्र बना देगा।

सचमुच यह आश्चर्य की बात है कि माता-पिता क्या सोच-कर अपने बच्चे का नाम रखते हैं। यह तो स्पष्ट है कि गुण-दोषों का विचार कर लोग नाम नहीं रखते। बच्चे मे गुण-दोष की विवेचना कैसे हो सकती है? फिर कुछ नाम ऐसे भी हैं जिनका कुछ अर्थ नहीं। चन्द्र की मधुरिमा और आदित्य की कान्ति का विचार कर यदि लाल प्रद्युम्नसिंह ने अपने नाती का नाम चन्द्रादित्य रख दिया तो वह सचमुच उसके लिए सार्थक हुआ। परन्तु इसी नगर के किनारे ही लोग भीम, अर्जुन, हरिश्चन्द्र आदि प्रसिद्ध नाम धारण कर अपना जो जीवन व्यतीत कर रहे हैं उसमें क्या कोई विशेषता है? परन्तु ऐसा नाम रख-कर भी लोगों ने प्रतिष्ठा पूर्वक अपना जीवन व्यतीत किया है। बाबू घोएडूसिंह का क्या अर्थ है? तो भी अपने नगर मे उन्होंने जो प्रतिष्ठा और ख्याति अर्जित की है उसे कौन नहीं जानता? इसी

प्रकार कोदन साव, हिरावल पोद्दार, वामी वाबू क्या किसी विशेष अर्थ के द्योतक हैं ? ये सब नाम किन भावों की प्रेरणा से रखे गये हैं, समझ में नहीं आता। तो भी इन सभी व्यक्तियों ने अपने जीवन में विशेषता प्राप्त की। बात यह है कि चाहे नाम अर्थवान हो चाहे निरर्थक. किसी को भी अपने नाम से विरक्ति नहीं हुई। सभो को अपने नामों का गर्व होता है। कोई यह नहीं चाहता कि लोग उसे दूसरे नामों से पुकारें। नाम उनके लिए पैतृक सम्पत्ति है। उसमें माता-पिता का स्नेह है, उनकी ममता है, उनका उल्लास है और उनका अधिकार है। यदि हम अपने नामों को छोड़ बैठें तो हम अपने इन भावों से भी हाथ धो बैठेंगे।

फिर भी संसार में ऐसे मनुष्यों का अभाव नहीं है जो अपने नामों को बदल डालते हैं। ऐसे लोग अपने हृदय में अपने नाम की हीनता का अवश्य अनुभव करते हैं। उन्हें ऐसा जान पड़ता है कि उसी हीनता के कारण उन्हें अपने जीवन में हीन रहना पड़ा। इसीलिए वे नाम को परिवर्तित कर गौरव के छद्म-वेश में रहना चाहते हैं। वे मानो काक होकर हंसों की श्रेणी में बैठना चाहते हैं।

मैं तो प्रत्येक नाम के साथ एक गुण विशेष की कल्पना कर लेता हूँ। नाम पर हम लोगों का जीवन है। उसी में हम लोगों का व्यक्तित्व है, उसी में हम लोगों की शक्ति और दुर्बलता छिपी हुई है। हमारे गुण और दोष उसी में सम्मिलित हैं। 'सत्यवती' में जो दृढ़ता और असहिष्णुता, दर्प और उदारता, हठ और प्रेम के भाव छिपे हुए हैं, वे क्या 'रोहिणी' में हैं ? 'सुमित्रा' में जो स्नेह, सेवा और शालीनता के भाव हैं वे क्या कैकेयी में हैं ? 'नारायण' में जो धैर्य, दृढ़ता और गम्भीरता है वह क्या 'रमाकान्त' में है ? 'गिरिजा' मे जो गम्भीरता और शालीनता

है वह क्या 'कामिनी' में है?……'कुछ भी हो मेरा तो यह विश्वास है कि ध्वनि मात्र से ही नाम अपना एक विशेष अर्थ प्रकट कर देते हैं। पर कौन कह सकता है कि हम लोगों के नाम-करण में विधाता की अज्ञात शक्ति काम नहीं कर रही है। यदि यह बात न होती तो इतने नामों के होते हुए भी माता-पिता क्यों अपने पुत्रों और कन्याओं को एक विशेष नाम देकर ही संसार में छोड़ते ?

मैं यदि अपना नाम बदलना चाहूँ तो भी मैं नहीं बदल सकता। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि अपने इसी नाम के कारण मैं इस स्थिति विशेष में पहुँचा हूँ। ज्योतिपशास्त्र के ज्ञाताओं का कहना है कि पृथ्वी से सैकड़ों हजारों मील दूर, अनन्त नभ में चक्कर लगाने वाले नक्षत्रों का इतना प्रभाव हम क्षुद्र मनुष्यों के जीवन पर पड़ता है कि उनके द्वारा हमारे जीवन की गति निर्दिष्ट हो जाती है, उन्हीं पर हमारा सुख-दुख निर्भर हो जाता है, उन्हीं पर हमारा भविष्य—भाग्य आश्रित रहता है। नाम सुन कर ऐसे विज्ञ जन हमारी जन्म-राशि का पता लगा लेते हैं और अमुक राशि में जन्म लेने के कारण अमुक अवस्था में कलंकारोपण और संकट की बात निस्संकोच बतला देते हैं। यह नाम का ही तो प्रभाव है ?

कुछ भी हो, नाम की महत्ता तो अवश्य है। धनी व्यक्ति अपना नाम छोड़ जाने के लिए बड़े-बड़े कीर्तिस्तम्भ बनवा डालते हैं; विद्वज्जन आजीवन परिश्रम कर नई-नई रचनाएँ छोड़ जाते हैं, वीर जन अपने पराक्रम की गाथाएँ ही चिर-स्मरणीय बना डालते हैं। नाम पर ही कीर्ति और प्रसिद्धि अवलम्बित है और नाम पर ही कलंक और अपयश आश्रित। हैं कुछ के नाम यदि उनके गुणों के कारण स्मरणीय होते हैं—तो कुछ के नाम उनके अवगुणों के कारण ही प्रसिद्ध हो जाते हैं। पर नाम

चाहे कितना भद्दा क्यों न हो, सभी लोग यह चाहेंगे कि दूसरे लोग इनके नामों का स्मरण करें। कलङ्क और अपयश का पात्र होकर भी मैं कभी यह नहीं चाहता कि कोई मेरे नाम को बिगाड़ कर मुझे पुकारे। मुझमें चाहे अन्य किसी गुण के कारण गर्व न हो, परन्तु माता-पिता द्वारा प्रदत्त अपने इस नाम का गर्व तो अवश्य है।

—पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी

परिचय

यह निबन्ध पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी के 'कुछ' नामक निबन्ध-संग्रह में से लिया गया है। बख्शी जी स्वर्गीय महावीर प्रसाद द्विवेदी के प्रिय शिष्यों में से हैं, इन्होंने बहुत वर्षों तक 'सरस्वती' का सम्पादन किया है। बख्शी जी ने अनेक साहित्यिक तथा समालोचनात्मक लेख लिखे हैं। 'विश्व-साहित्य' ऐसे ही लेखों का संग्रह है। इधर आपकी प्रवृत्ति व्यक्ति-व्यंजक निबंधों की तरफ झुकी है। हिन्दी में इस ओर बहुत कम लोगों ने ध्यान दिया है। आज कल आप अध्यापन-कार्य करते हुये साहित्य-साधना में तल्लीन हैं। 'डायरी के पन्ने' शीर्षक में आपने इधर काफी विचारात्मक लेख लिखे हैं।

अभ्यास

सामान्य प्रश्न—

१—लोग अपने बच्चों का नाम रखते समय किस बात का ध्यान रखते हैं?

२—सब को अपना नाम क्यों प्रिय होता है?

३—क्या नाम का प्रभाव मनुष्य के स्वभाव पर पड़ता है?

शब्दाध्ययन—

१—अधोलिखित शब्दों का अर्थ बताते हुये उनका विलोम शब्द लिखो—अनुरक्ति, असहिष्णुता

२—'नाम' संबंधी मुहावरे बना कर उनका प्रयोग अपने वाक्यों में करो।

व्याकरण—

१—बड़े अक्षरोंमें छपे शब्दों की पद–व्याख्या करो—

मैं तो प्रत्येक नाम के साथ एक गुण विशेष की कल्पना कर लेता हूँ।

रचना—

१—अधोलिखित वाक्यों का भाव स्पष्ट करो।

(क) नाम उनके लिये पैतृक सम्पत्ति हैं।

(ख) ध्वनिमात्र से ही नाम अपना एक विशेष अर्थ प्रकट कर देते हैं।

आदेश

अपनी कक्षा के छात्रों के नामों की एक सूची तैयार करो और उनको दृष्टि में रखकर एक मनोरंजक निबंध लिखो।

———

विविध कला शिक्षा अमित ज्ञान अनेक प्रकार।
सब देसन से ले करहु भाषा माहि प्रचार॥
प्रचलित करहुँ जहान में निज भाषा करि जत्न।
राज-काज दरबार में फैलावहु यह रत्न॥
आल्हा बिरहहु को भयो अंगरेजी अनुवाद।
यह लखि लाज न आवही तुमहि न होत विषाद॥
मेटहु तम अज्ञान को सुखी होहु सब कोय।
बाल-वृद्ध नर-नारि सब विद्या संयुत होय॥
फूट बैर को दूर कर बाँध कमर मजबूत।
भारतमाता के बनो भ्राता ' पूत सपूत॥
परदेशा की बुद्धि अरु वस्तुनि की करि आस।
परवस ह्वै कब लौं कहो, रहिहौ तुम ह्वै दास॥
निज भाषा, निज धरम, निज मान, करम व्यौहार।
सबै बढ़ावहु वेग मिल, कहत पुकार पुकार॥
लखहु उदित पूरब भयो भारत भानु प्रकास।
उठहु खिलावहु हिय कमल-करहु तिमिर दुख नास॥
करहु विलम्बु न भ्रात अब उठहु मिटावहु सूल।
निज भाषा उन्नति करहु प्रथम जो सबको मूल॥

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

परिचय

भारतेन्दु हरिशचन्द्र हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल के प्रारम्भिक लेखकों में सबसे बड़े कवि और लेखक तथा हिन्दी गद्य के पिता माने जाते हैं। इनके पहले हिन्दी में न तो अधिक साहित्य की ही रचना हुई थी और न गद्य की भाषा का ही कोई स्वरूप निश्चित हुआ था। भारतेन्दु ने ही गद्य की विभिन्न शैलियों—नाटक, कहानी, निबन्ध, व्यंग, आदिका प्रारम्भ और प्रसार किया।

वस्तुतः सबसे पहले इन्होंने ही पत्रों द्वारा, मित्रों को प्रेरित कर, साहित्यिकों की सहायता कर हिन्दी भाषा की जड़ मजबूत करने का प्रयत्न किया। उन्होंने कवितायें तो अधिकतर ब्रजभाषा में ही लिखी, किन्तु गद्य-साहित्य का निर्माण खड़ी बोली में किया। महान साहित्य के अतिरिक्त आप एक देशभक्त समाज-सेवी भी थे। उनके अनूदित और मौलिक नाटकों में विद्यासुन्दर, चन्द्रावली, मुद्राराक्षस, सत्य हरिश्चन्द्र, भारत दुर्दशा, नीलदेवी, आदि प्रसिद्ध हैं।

अभ्यास

सामान्य प्रश्न—

१—मातृभाषा की उन्नति करने के पक्ष में कवि ने क्या-क्या तर्क दिये हैं?

२—मातृभाषा हिन्दी की उन्नति ही सब उन्नति का मूल किस प्रकार है?

३—मातृभाषा की उन्नति किस प्रकार हो सकती है?

४—इस कविता में राष्ट्रीयता की झलक कितनी मिलती है?

शब्दाध्ययन—

१—निम्नलिखित शब्द ब्रजभाषा, अवधी और भोजपुरी में से किस बोली के हैं, उनका खड़ी बोली का रूप क्या होगा—अहै, को, बिन, भे, पै, बनत है, वस्तुनि, लौं, जब, जदपि।

२—निम्न शब्दों के विलोम बताओ:—ज्ञान, प्रवीन, सपूत, दाप, तिमिर, उन्नति।

रस-अलंकार—

१—इस दोहे मे कौन अलंकार है:—लखहु उदित पूरब भये भारत भानु प्रकाश। उठहु खिलावहु हिय कमल करहु तिमिर दुख नास।

२—इस कविता को पढ़कर हृदय में किस रस का संचार होता है?

रचना—

१—उपर्युक्त दोहे का अर्थ लिखो।

२—इस कविता के आधार पर 'मातृभाषा' के सम्बन्ध में एक लेख लिखो।

आदेश

राष्ट्रभाषा और मातृभाषा में अन्तर होता है—अपने अध्यापक तथा पत्र-पत्रिकाओं से इस सम्बन्ध के ज्ञान प्राप्त करो।

———

[२६]

ग्राम पंचायतें और समाज-सेवा

[श्री श्रीप्रकाश लिखित लेख 'कुछ छोटी बातें' में पढ़ चुके हो कि प्रत्येक व्यक्ति अलग-अलग अपना कर्तव्य करके भी समाज-सेवा ही करता है। किन्तु समूचे समाज का अधिकाधिक कल्याण तभी हो सकता है जब कि जनता अपने प्रतिनिधि चुन कर उनके द्वारा सामाजिक व्यवस्था को चलावे। इस प्रकार धारा-सभा म्युनिसिपैलिटी, जिला बोर्ड और ग्राम-पंचायतों के ऊपर समाज-सेवा—जैसे शिक्षा, खाद्यान्न की कमी दूर करना, सफाई, न्याय, प्रबन्ध आदि की सारी जिम्मेदारी चली जाती है। इस पाठ में यही बताया गया है कि ग्राम पंचायतें समाज-सेवा का कार्य किस रूप में कर सकती हैं।]

प्रजातंत्र, जन-कार्य, शोषण, पुनर्संगठन, उत्तरदायी, निवारण

भारतवर्ष में लोकतंत्र की परम्परा बहुत पुरानी है। लोकतंत्र का तात्पर्य यह है कि किसी देश की जनता अपना शासन-प्रबन्ध स्वयं करे; उसके ऊपर कोई राजा या विदेशी लोग नौकरशाही द्वारा शासन न करें। प्राचीन काल में गौतमबुद्ध के पहले और बाद में भी हमारे देश में अनेक ऐसे गणराज्यों का उल्लेख मिलता है जहाँ जनता के प्रतिनिधि मिलकर शासन करते थे। मल्ल, वज्जि, लिच्छवि; शाक्य मालवा, आदि गणराज्य उनमें से प्रमुख थे। ये गणतंत्र एक प्रकार के पंचायत-राज्य थे जो जीवन के विभिन्न पहलुओं-जैसे उद्योग, व्यापार, समाज-संगठन, न्याय आदि के सम्बन्ध में अपने अधिकारों का प्रयोग करते थे। इन अधिकारों का प्रयोग अनेक नियमों के अनुसार होता था। नियमों में अधिकतर अलिखित थे और शेष प्रतिज्ञा-पत्र के रूप में थे। प्रतिज्ञापत्र राज्य

ग्राम पञ्चायत की प्रौढ़ पाठशाला
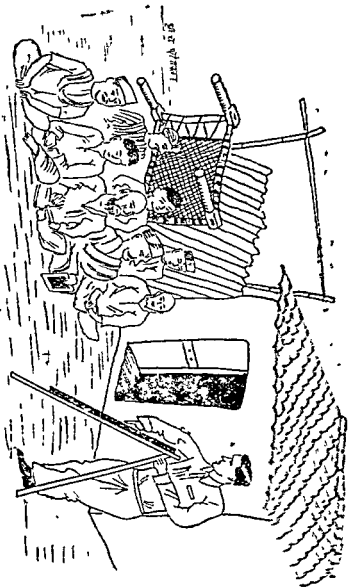
और परिषद् या परिषद् और उसके सदस्यों द्वारा किये जाते थे। इन सभाओं के अनेक विभाग होते थे—जैसे जनकार्य, उद्योग, चिकित्सा, सफाई, पुलिस, दिवानी और फौजदारी का न्याय, सार्वजनिक भवनों, मंदिरों, शालाओं, विश्राम-गृहों, कुओं आदि का निर्माण, धार्मिक स्थानों का संरक्षण, दुखियों का दुख-निवारण और मृतकों की अंत्येष्टि क्रिया। शासन की विभिन्न शाखाओं की देखभाल के लिए वे समितियों का निर्माण करते थे जिसके सदस्य मतदान द्वारा चुने जाते थे।

यह लोकतन्त्र की परंपरा किसी न किसी रूप में हमारे गांवों में आज भी देखी जाती है। अंग्रेजी शासन के पहले गांवों का सामाजिक संगठन बहुत ही दृढ़ था। अंग्रेजी शासन में विदेशी शोषण और रीति-रिवाजों के फलस्वरूप यह व्यवस्था बहुत कुछ छिन्न-भिन्न होती जा रही थी। महात्मागांधी ने इस बात को अच्छी तरह समझ लिया था कि सच्ची स्वतन्त्रता तब तक नहीं हो सकती जब तक कि भारतवर्ष के गांवों का पुनः संगठन नहीं हो जाता। गांधीजी ने देख लिया था कि यांत्रिक उद्योगों के विकास के साथ साथ ग्रामीण जीवन का ह्रास होता जा रहा है और गांवों की आबादी धीरे धीरे शहरों में चली जा रही है और इस प्रकार देश की शक्ति और समृद्धि बड़े-बड़े नगरों, जैसे कलकत्ता, बम्बई, अहमदाबाद, कानपुर आदि में केंद्रित होती जा रही है। इसीलिये गांधीजी ने स्वराज्य का अर्थ रामराज्य किया जिसमें शक्ति और समृद्धि का विकेंद्रीकरण हो जायगा, अर्थात् प्रत्येक गांव स्वावलंबी, समृद्ध और शक्तिशाली बन जायगा और इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति में नैतिक और सामाजिक भावना बढ़ेगी।

हमारे प्रान्त—उत्तर प्रदेश में जनता के प्रतिनिधियों का उत्तरदायी शासन है, अतः प्रांतीय सरकार ने गांधीजी के आदर्शों

को ध्यान में रखकर प्रांत के एक लाख बारह हजार गांवों का पुनः संगठन करने का विचार किया और पंचायत-राज्य कानून का निर्माण किया। यह कानून सन् १९४९ से लागू हो गया है। इसके अनुसार एक हजार से अधिक आबादीवाले प्रत्येक गांव या छोटे गावों के समूह में एक ग्रामसभा है जिसके सदस्यो को वहां के सभी बालिग लोगों ने मतदान द्वारा चुना है। ग्राम-सभा का एक सभापति और एक मंत्री होता है। प्रत्येक गांव मे अदालती पंच भी चुने गये हैं। ऐसे कई गावों को मिलाकर अदालती पंचायतें भी बनवाई गई है। इन पंचायतो को अनेक फौजदारी और दिवानी न्याय सम्बन्धी कुछ अधिकार भी दिये गये हैं, ताकि छोटे छोटे झगडों का फैसला बिना खर्च गांवों मे ही हो जाय। यद्यपि कानून न्याय-पंचायतो के अधिकार सीमित हैं, फिर भी वे ग्रामीण जनता का बहुत कुछ धन मुकद्दमेबाजी में नष्ट होने से बचा सकते हैं। गाँवों की सफाई, शिक्षा, स्वास्थ्य और आयवृद्धि आदि का कार्य भी ग्रामसभाओं के सुपूर्द किया गया है।

पश्चिमी ढंग के लोकतन्त्रका एक सबसे बड़ा दोष यह है कि उसके प्रभाव में व्यक्ति अपने अधिकारो का तो पहले देखता है परंतु अपने कर्तव्य की तरफ उसका ध्यान नहीं जाता। केन्द्रीय और प्रांतीय धारासभाओं तथा म्युनिसिपल और जिला बोर्डों के चुनावों मे जो इतनी दला-दली और दौड धूप होती है, उसका फल यही है कि लोग समझते हैं कि चुनाव मे जीत जाने पर उन्हें कुछ विशेष अधिकार प्राप्त हो जायंगे। यदि लोग सोच ले कि उनके ऊपर कर्तव्यों का कितना बड़ा बोझा आ जायगा तो वे इस ओर डर कर पॉव बढावें। ग्राम सभाओं और न्याय-पंचायतों में भी यही बात दिखाई पडती है। अत यह आवश्यक है कि ग्रामों के पुन संघटन के लिये पंचायतों को जो अधिकार

दिये गये हैं उन्हें समझने के पहले जनता इन सभाओं के सदस्यों के कर्तव्यों को अच्छी तरह समझ ले।

वस्तुतः यदि हमारी पंचायतें ठीक-ठीक काम करें तो वे धीरे धीरे गावों को स्वर्ग बना सकती हैं। गावों में पहले जिस प्रकार का पंचायती संगठन था उससे आज की पंचायतों को बहुत कुछ सीखना होगा। सबसे प्रधान बात तो यह है कि ग्राम-सभाओं और पंचायतों के सदस्यों को जनता का निःस्वार्थ सेवक बनना होगा। उन्हें यह समझना होगा कि गावों में क्या बुराइयाँ हैं, जनता के जीवन-स्तर को कैसे ऊँचा उठाया जा सकता है और किस प्रकार गाँव समृद्धिशाली और शक्ति-संपन्न बन सकते हैं। इसके लिए उन्हें ग्राम सेवा के निम्नलिखित रूपों की ओर ध्यान देना होगा। ग्राम-सेवा के चार स्तम्भ हैं। (१) स्वावलंबन (२) सहयोग (३) शिक्षा (४) स्वास्थ्य। गांधीजी ने विकेंद्रीकरण द्वारा गांवों को स्वावलंबी बनाना चाहा था। जब तक गाँवों की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं होती तब तक उन्हें स्वर्ग बनाने की बात स्वप्नवत ही है। अतः ग्राम-सभाओं का कर्तव्य है कि वे ग्रामोद्योगों का प्रचार करें, सहकारी दुकानों, बैंक और सहकारी खेतों का प्रारंभ करें और इस तरह दरिद्रता और बेकारी को मार भगावें। यह काम तब तक नहीं हो सकता जब तक कि गाँव के सभी लोग मिलकर काम न करें। आज के युग में संगठन में ही शक्ति है! अतः संगठित होकर अत्याचारियों और चोर बाजार वालों, चोरों, डाकुओं, फसलों का नुकसान करनेवाले पशुओं आदि का निवारण बहुत अच्छी तरह से किया जा सकता है। इसी प्रकार सहयोग से जनता पारिवारिक कार्यों में भी एक दूसरे को सहायता कर सकती है। ग्रामसभाएँ यह संगठन-कार्य अच्छी तरह से कर सकती हैं।

इसी प्रकार शिक्षा और स्वास्थ्य के संबंध में भी ग्राम-सभाओं

का उत्तरदायित्व बहुत अधिक है। ग्राम-सभाओं को रात्रि-पाठशालाएँ खोल कर प्रौढ़ शिक्षा का प्रबंध करना चाहिये और पाँच वर्ष से अधिक उम्र वाले प्रत्येक बालक को पढ़ना अनिवार्य कर देना चाहिये। जनता की मानसिक भूख को तृप्त करने के लिए पुस्तकालय खोलना और समाचार पत्र भी मँगाना चाहिये। लोक-गीत और लोक-कलाओं जैसे-बिरहा, कजली और लोक नृत्य-जैसे धावी और अहीरों आदि के नाच को प्रोत्साहित करना चाहिये और उनमें राष्ट्रीयता तथा सामाजिक भावना उत्पन्न करनी चाहिये! स्वास्थ्य और सफाई की ओर ध्यान देना भी ग्राम-सभाओं का प्रधान कर्तव्य है। गाँव के लोगों को अपने-अपने घरों, दरवाजे और पड़ोस को साफ रखने के लिये बाध्य करना चाहिये। पतले रास्तों और गलियों को चौड़ा करना, घूरे को अलग रखना, घर के पास गड्ढे न रखना, उत्तम खाद बनाना और अधिक अन्न उपजाना, चिकित्सा का प्रबंध करना आदि ऐसे कार्य हैं जिन्हें कर के ग्राम सभाओं के सदस्य लोकप्रियता भी प्राप्त कर सकते हैं और अपना उत्तरदायित्व भी पूरा कर सकते हैं। ऐसा होने पर ही हमारे गाँव स्वर्ग बन सकते हैं।

अभ्यास

सामान्य प्रश्न—

१—प्रजातन्त्र या लोकतन्त्र किसे कहते हैं? प्रजातन्त्र और राजतन्त्र तथा नौकरशाही में क्या अन्तर है?

२—प्राचीन काल के गणतन्त्र कैसे शासन-प्रबन्ध करते थे।

३—गान्धी जी के रामराज्य का क्या तात्पर्य था?

४—ग्राम पंचायतों को कौन कौन से समाज सेवा के कार्य करने चाहिये जिससे हमारे गाव स्वर्ग बन जायँ।

[२७]

साहित्य की महत्ता

['साहित्य संगीत कला विहीन, साक्षात् पशु पुच्छ विषाण हीन।' भर्तृहरि के इस कथन से ही साहित्य का महत्व भली भांति प्रकट हो जाता है। आहार, निद्रा, भय आदि स्वभाव तो जीवधारी मात्र में पाये जाते हैं, मनुष्य की मनुष्यता इसी में है कि वह पशु-पक्षी के स्वभाव से ऊपर उठ कर बुद्धि और हृदय का विकास करे। जिस जाति में साहित्य और कला का विकास नहीं हुआ है, उसमें बुद्धि और हृदय तत्त्व भी निश्चय ही अविकसित होते हैं। इसीलिए सभ्य और सुसंस्कृत होने का लक्षण साहित्य, संगीत, कला आदि ही हैं। साहित्य मनुष्य के हृदय को विकसित कर उस के चित्त का परिष्कार कर उसे सच्चा मनुष्य बनाता है। अत विज्ञान शास्त्र आदि की उन्नति के साथ ही साहित्य कला आदि की उन्नति भी परम आवश्यक है। विद्वान लेखक ने इसी बात को इस लेख में स्पष्ट किया है।]

सम्पन्नता, मर्यादा, उत्कर्षापकर्ष, कालान्तर, विसर्जन, अचिरात, किम्बहुना

ज्ञान-राशि के संचित कोश ही का नाम साहित्य है। सब तरह के भावों को प्रकट करने की योग्यता रखने वाली और निर्दोष होने पर भी, यदि कोई भाषा अपना निज का साहित्य नहीं रखती तो वह रूपवती भिखारिन की तरह कदापि आदरणीय नहीं हो सकता। उसकी शोभा, उसकी श्री-सम्पन्नता, उसकी मान मर्यादा, उसके साहित्य ही पर अवलम्बित रहती है। जाति विशेष के उत्कर्षापकर्ष का, उसके उच्च-नीच भावों का, उसके धार्मिक विचारों और सामाजिक संगठन का, उसके ऐतिहासिक घटना चक्रों और राजनैतिक स्थितियों का प्रतिबिम्ब देखने को यदि कहीं मिल सकता

है, तो उसके दर्शन-साहित्य ही में मिल सकता है। सामाजिक शक्ति या सजीवता, सामाजिक अशक्ति या निर्जीवता और सामाजिक सभ्यता तथा असभ्यता का निर्णायक एक मात्र साहित्य है। जिस जाति विशेष में साहित्य का अभाव या उसकी न्यूनता आप को देख पड़े, आप यह निस्सन्देह निश्चित समझिये कि वह जाति असभ्य किंवा अपूर्ण सभ्य है। जिस जाति की सामाजिक अवस्था जैसी होती है उसका साहित्य भी ठीक वैसा ही होता है। जातियों की सबलता और सजीवता यदि कहीं प्रत्यक्ष देखने को मिल सकती है तो उनके साहित्य रूपी आईने ही में मिल सकती है। इस आईने के सामने जाते ही हमें यह तत्काल मालूम हो जाता है कि अमुक जाति की जीवनी-शक्ति इस समय कितनी या कैसी है और भूतकाल में कितनी और कैसी थी। आप भोजन करना बन्द कर दीजिये, आप का शरीर क्षीण हो जायगा और अचिरात् नाशोन्मुख होने लगेगा। इसी तरह आप साहित्य के रसास्वादन से अपने मस्तिष्क को वंचित कर दीजिये, वह निष्क्रिय हो कर धीरे-धीरे किसी काम का नहीं रह जायगा। बात यह है कि शरीर के जिस अंग का जो काम है वह उससे यदि न लिया जाय, तो उसकी वह काम करने की शक्ति नष्ट हुए बिना नहीं रहती। शरीर का खाद्य भोजनीय पदार्थ है, और मस्तिष्क का खाद्य साहित्य। अतएव यदि हम अपने मस्तिष्क को निष्क्रिय और कालान्तर में निर्जीव सा नहीं कर डालना चाहते तो हमें साहित्य का सतत सेवन करना चाहिये और उस में नवीनता तथा पौष्टिकता लाने के लिए उसका उत्पादन भी करते जाना चाहिये। पर याद रखिये, विकृत भोजन से जैसे शरीर रुग्ण हो कर बिगड़ जाता है उसी तरह विकृत साहित्य से मस्तिष्क भी विकार-ग्रस्त हो कर रोगी हो जाता है। मस्तिष्क का बलवान और शक्ति-सम्पन्न होना अच्छे साहित्य पर ही अवलम्बित है। यह बात निर्भ्रान्त है कि मस्तिष्क

के यथेष्ट विकास का एकमात्र साधन अच्छा साहित्य है। यदि हमें जीवित रहना है और सभ्यता की दौड़ में अन्य जातियों की बराबरी करना है तो श्रम पूर्वक बड़े उत्साह से सत्साहित्य का उत्पादन और प्राचीन साहित्य की रक्षा करनी चाहिये। और यदि हम अपने मानसिक जीवन की हत्या कर के अपनी वर्तमान दयनीय दशा में पड़े रहना ही अच्छा समझते हों, तो आज ही इस साहित्य-सम्मेलन के आडम्बर का विसर्जन कर डालना चाहिये।

आँख उठा कर जरा और देशों तथा जातियों की ओर तो देखिये। आप देखेंगे कि साहित्य ने वहाँ की सामाजिक और राजकीय स्थितियों में कैसे कैसे परिवर्तन कर डाले हैं। साहित्य ने वहाँ समाज की दशा कुछ से कुछ कर दी है, यहाँ तक कि अनुदार धार्मिक भावों को भी जड़ से उखाड़ फेंका है। साहित्य में जो शक्ति छिपी रहती है वह तोप, तलवार और बम के गोलों में भी नहीं पाई जाती। यूरोप में हानिकारिणी धार्मिक रूढ़ियों का उत्पादन साहित्य ने ही किया है; जातीय स्वतन्त्रता के बीज उसी ने बोये हैं। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के भावों को भी उसी ने पाला, पोसा और बढ़ाया है, पतित देशों का पुनरुत्थान भी उसी ने किया है। पोप की प्रभुता को किसने कम किया है? पदाक्रान्त इटली का मस्तक किसने ऊंचा उठाया है? साहित्य ने, साहित्य ने, साहित्य ने। जिस साहित्य में इतनी शक्ति है, जो साहित्य मुर्दों को भी जिन्दा करने वाली संजीवनी औषधि का आकर है, जो साहित्य पतितों को उठाने वाला और उत्थितों के मस्तक को उन्नत करने वाला है, उसके उत्पादन और सम्वर्धन की चेष्टा जो जाति नहीं करती वह अज्ञानान्धकार के गर्त में पड़ी रह कर किसी दिन अपना अस्तित्व खो बैठती है। अतएव समर्थ हो कर भी जो मनुष्य इतने महत्वशाली साहित्य की सेवा और अभिवृद्धि नहीं करता

अथवा उस मे अनुराग नहीं रखता, वह समाजद्रोही है, वह देशद्रोही है, वह जाति द्रोही है, किम्बहुना वह आत्मद्रोही और आत्म हन्ता भी है।

कभी-कभी कोई समृद्ध भाषा अपने ऐश्वर्य के बल पर दूसरी भाषाओं पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लेती है, जैसा जर्मनी, रूस, इटली आदि देशों की भाषाओं पर फ्रेंच भाषा ने बहुत समय तक कर लिया था। स्वयं अङ्गरेजी भाषा भी फ्रेंच और लेटिन भाषाओं के दबाव से नहीं बच सकता। कभी-कभी यह दशा राजनैतिक प्रभुत्व के कारण भी उपस्थित हो जाती है और विजित देशों की भाषाओं का जेता जाति की भाषा दबा देती है। तब उनके साहित्य का उत्पादन यदि बन्द नहीं हो जाता तो उसकी वृद्धि की गति मन्द जरूर पड़ जाती है। यह अस्वाभाविक दबाव सदा नहीं बना रहता। इस प्रकार की दबी या अधःपतित भाषाएँ बोलने वाले जब होश में आ जाते हैं तब वे इस अनैसर्गिक आच्छादन को दूर फेंक देते हैं। जर्मनी, रूस, इटली और स्वयं इङ्गलैण्ड चिरकाल तक फ्रेंच और लेटिन भाषाओं के मायाजाल में फँसे थे। पर बहुत समय हुआ, उस जाल को उन्होंने तोड़ डाला। अब वे अपनी ही भाषा के साहित्य की अभिवृद्धि करते हैं, कभी भूल कर भी विदेशी भाषाओं में ग्रंथ-रचना करने का विचार तक नहीं करते। बात यह है कि अपनी भाषा का साहित्य ही स्वजाति और स्वदेश की उन्नति का साधक है। विदेशी भाषा का चूड़ान्त ज्ञान प्राप्त कर लेने और उस में महत्वपूर्ण ग्रन्थ-रचना करने पर भी विशेष सफलता नहीं हो सकती और अपने देश को विशेष लाभ नहीं पहुंच सकता। अपनी माँ को निस्सहाय, निरुपाय और निर्धन दशा में छोड़ कर जो मनुष्य दूसरे की मां की सेवा में रत होता है उस अधम की कृतघ्नता का क्या प्रायश्चित होना चाहिए, इसका निर्णय कोई मनु, याज्ञवल्क या आपस्तम्ब ही कर सकता है।

मेरा यह मतलब कदापि नहीं कि विदेशी भाषाएँ सीखनी ही न चाहिये; नहीं, आवश्यकता, अनुकूलता, अवसर और अवकाश होने पर हमें एक नहीं अनेक भाषायें सीख कर ज्ञानार्जन करना चाहिए, द्वेष किसी भी भाषा से न करना चाहिये, ज्ञान कहीं भी मिलता हो, उसे ग्रहण ही कर लेना चाहिए। परन्तु अपनी भाषा और उसी के साहित्य को प्रधानता देनी चाहिये, क्योंकि अपना, अपने देश का, अपनी जाति का उपकार और कल्याण अपनी ही भाषा के साहित्य की उन्नति से हो सकता है। ज्ञान, विज्ञान, धर्म और राजनीति की भाषा सदैव लोक-भाषा ही होनी चाहिये। अतएव अपनी भाषा के साहित्य की सेवा और अभिवृद्धि करना, सभी दृष्टियों से हमारा परम धर्म है।

—महावीर प्रसाद द्विवेदी

परिचय

यह निबन्ध हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध आचार्य स्वर्गीय प० महावीर प्रसाद द्विवेदी का लिखा हुआ है। जिस प्रकार हिन्दी गद्य का प्रारम्भ करने वाले भारतेन्दु हरिश्चन्द्र माने जाते हैं, उसी प्रकार हिन्दी गद्य का परिमार्जित करने वाले, इसका स्वरूप निश्चित करने वाले तथा उसके साहित्य को समृद्ध हाने में सब से अधिक योग देने वाले आचार्य द्विवेदी जी ही माने जाते हैं। द्विवेदी जी का महत्व इसी से स्पष्ट हो जाता है कि सन् १६०० से लेकर १६१८ तक के काल को हिन्दी साहित्य मे द्विवेदी युग कहते हैं। 'सरस्वती' के सम्पादक के रूप में उन्होने एक युग तक न केवल विविध विषयों पर निबन्ध, समीक्षा आदि स्वयं लिखा, वरन् दूसरों से काफी लिखवाया। बहुतों को उन्होंने लेखक बनाया, बहुतों की भाषा, रचना आदि शुद्ध कर उन्हें प्रख्यात बना दिया। साहित्य में उन्होने नई दिशाएँ बनाईं, ब्रजभाषा की जगह खड़ी बोली में कविता लिखने की चलन शुरू की,

रीतिकालीन काव्य सम्बन्धी परम्परा को छोड़ कर प्राचीन उपाख्यानों और छन्दों आदि द्वारा तथा नैतिकता और उपदेश का पथ ग्रहण कर उन्होंने अपना आचार्यत्व स्थापित किया। निस्सन्देह वे एक युग तक हिन्दी-जगत के बिना ताज के सम्राट् थे। वे रायबरेली जिले के रहने वाले थे।

अभ्यास

सामान्य प्रश्न—

१—साहित्य की परिभाषा द्विवेदी जी के अनुसार क्या है?
२—साहित्य से समाज या व्यक्ति को क्या लाभ होता है?
३—साहित्य से विभिन्न देशों में क्या क्या कार्य सम्पन्न हुए हैं?
४—साहित्य की रचना अपनी ही भाषा में क्यों करनी चाहिये?
५—याज्ञवल्क, मनु और आपस्तम्ब के बारे में क्या जानते हो?

शब्दाध्ययन—

१—निम्नलिखित शब्दों का अर्थ स्पष्ट करो—
चूड़ान्त-ज्ञान, संजीवनी औषधि, उत्कर्षापकर्ष, श्री सम्पन्नता, आडम्बर का विसर्जन, किम्बहुना।

२—निम्नलिखित शब्दों से उनके उपसर्ग अलग करो और अप, सम, अभि, आदि नये उपसर्ग लगा कर शब्द बनाओ:—
उत्पादन, उत्थित, उत्कर्ष, उद्धार।

व्याकरण—

१—सन्धि-विग्रह कर के सन्धि का नाम बताओ:—
चूडान्त, उत्कर्षापकर्ष, कालान्तर, निर्दोष, अनुदार।

२—वाक्य-विश्लेषण करो:-"आप की माँ को निस्सहाय, निरुपाय········ याज्ञवल्क या आपस्तम्ब ही कर सकता है।"

रचना—

१—'साहित्य और समाज का सम्बंध' इस विषय पर एक लेख लिखो।

२—इस लेख के पहले अनुच्छेद के प्रथम पाँच वाक्यों का भाव स्पष्ट करो।

आदेश

अपने भीतर साहित्यिक रुचि उत्पन्न करने के लिए हिन्दी के बड़े लेखकों की पुस्तकें पुस्तकालय से लेकर पढ़ो और स्वयं भी कविता, कहानी, निबन्ध आदि लिखने का प्रयत्न करो।

लंका-दहन

[गोस्वामी तुलसीदासजी के रामचरित मानस से हनुमानजी द्वारा लंका के जलाये जाने का प्रसंग यहाँ दिया जा रहा है। हनुमानजी लंका में पहुंच कर सबसे पहले विभीषण के यहाँ गये। वहाँ से सीताजी के बारे में पता लगाकर अशोकवाटिका में गये और मुद्रिका देकर राम का सन्देश सीताजी से कह सुनाया। जब वे अशोकवाटिका को उजाड़ने लगे तो रावण के आदमियों से युद्ध भी हुआ। अन्त में हनुमानजी पकड़कर रावण के दरबार में लाये गये जहाँ उन्होंने सीता को लौटा देने के लिए रावण को उपदेश भी दिया। उसी स्थल का वर्णन यहाँ दिया गया है।]

तनय, पावक, सारद, मरुत, निबुक, अरना, हरुआई

जानहुँ मैं तुम्हारि प्रभुताई। सहसबाहु सन परी लराई॥
समर बालि सन करि जसु पावा। सुनि कपि-बचन बिहँसि बहरावा॥
खायउँ फल प्रभु लागी भूखा। कपि सुभाय तें तोरेउँ रूखा॥
सबके देह परम प्रिय स्वामी। मारहिं मोहि कुमारग गामी॥
जिन्ह मोहि मारा ते मैं मारे। तेहि पर बाँधेउ तनय तुम्हारे॥
मोहि न कछु बाँधे कइ लाजा। कीन्ह चहउँ निज प्रभु कर काजा॥
बिनती करउ जोरि कर रावन। सुनहु मान तजि मोर सिखावन॥
देखहु तुम निज कुलहिं बिचारी। भ्रम तजि भजहु भगत-भय-हारी॥
जाके डर अति काल डेराई। जो सुर असुर चराचर खाई॥
तासों बयरु कबहुँ नहिं कीजे। मोरे कहे जानकी दीजे॥

प्रनत पाल रघुनन्दन, करुना सिन्धु खरारि।
गये सरन प्रभु राखिहैं, सब अपराध बिसारि॥

यदपि कही कपि हित अति बानी। भगति, विवेक, विरति, नय सानी॥
बोला बिहँसि महा अभिमानी। मिला हमहिं कपि गुरु बड़ ग्यानी॥
मृत्यु निकट आई खल तोही। लागेसि अधम सिखावन मोही॥
उलटा होइहि, कह हनुमाना। मतिभ्रम तोर प्रगट मैं जाना॥
सुनि कपि बचन बहुत खिसिआना। बेगि न हरहु मूढ़ कर प्राना॥
सुनत निसाचर मारन धाये। सचिवन सहित विभीषण आये॥
नाइ सीस, करि विनय बहूता। नीति-विरोध, न मारिअ दूता॥
आन दण्ड कछु करिअ गोसाईं। सबहीं कहा मंत्र भल भाई॥
सुनत बिहँसि बोला दसकन्धर। अंग भंग करि पठइअ बन्दर॥

कपि के ममता पूछ पर, सबहि कहउँ समुझाइ।
तेल बोरि पट बाँध पुनि, पावक देहु लगाइ॥

पूँछ हीन बानर तहँ जाइहि। तब सठ निज नाथहिं लै आइहि॥
जिन्ह के कीन्हेसि बहुत बड़ाई। देखउँ मैं तिन कर प्रभुताई॥
बचन सुनत कपि मन मुसकाना। भइ सहाय सारद मैं जाना॥
जातुधान सुनि रावन बचना। लागे रचन मूढ़ सोइ रचना॥
रहा न नगर बसन घृत तेला। बाढ़ी पूँछ, कीन्ह कपि खेला॥
कौतुक कहँ आये पुरवासी। मारहि चरण करहि बहु हाँसी॥
बाजहिं ढोल देहि सब तारी। नगर फेरि पुनि पूछ प्रजारी॥
पावक जरत देखि हनुमन्ता। भयउ परम लघु रूप तुरन्ता॥
निबुक चढ़ेउ कपि कनक अटारी। भई सभीत निसाचर नारी॥

हरि प्रेरित तेहि अवसर, चले मरत उनचास।
अट्टहास करि गरजा कपि, बढ़ी आग अकास॥

देह बिसाल, परम हरुआई। मन्दिर ते मन्दिर चढ़ि धाई॥
जरइ नगर भा लोग बिहाला। झपट लपट बहु कोटि कराला॥
तात! मातु! हा! सुनिय पुकारा। यहि अवसर को हमहि उबारा॥
हम जो कहा, यह कपि नहिं होई। बानर रूप धरें सुर कोई॥
साधु अवज्ञा कर फलु ऐसा। जरइ नगर अनाथ कर जैसा॥
जारा नगर निमिष एक माहीं। एक बिभीषन कर गृह नाहीं॥

ताकर दूत अनल जेहिं सिरजा। जरा न सो तेहि कारन गिरजा॥
उलटि पलटि कपि लंका जारी। कूदि परा पुनि सिन्धु मझारी॥
पूँछ बुझाई खोइ श्रम, धरि लघु रूप बहोरि॥
जनक सुता के आगे, ठाढ़ भयेउ कर जोरि॥

परिचय

'रामचरित-मानस' के लेखक गोस्वामी तुलसीदास जी हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। हिन्दी-भाषा-भाषियों को गोस्वामी जी का अधिक परिचय देने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि उत्तरी भारत में रामचरित मानस का घर-घर में धर्म ग्रन्थ के समान आदर होता है। अतः शायद ही कोई व्यक्ति गोस्वामी जी के नाम से अपरिचित हो। गोस्वामी जी का जन्म सं० १५५४ में राजापुर में (बाँदा) और देहावसान सं० १६८० में काशी में होना माना जाता है। रामचरित-मानस के अतिरिक्त गोस्वामीजी ने कवितावली, गीतावली, विनय-पत्रिका, रामलला नहछू, दोहावली आदि ग्रन्थों की भी रचना की। वे रामचन्द्रजी के अनन्य भक्त थे। उन्होंने ब्रजभाषा और अवधी दोनों में कवितायें लिखी हैं।

अभ्यास

सामान्य प्रश्न—

१—हनुमानजी ने रावण को क्या उपदेश दिये ?
२—रावण ने उन्हें क्या उत्तर दिया ?
३—हनुमानजी ने लंका को किस प्रकार जलाया ?

शब्दाध्ययन—

१—यह कविता किस भाषा में लिखी गयी है ?
२—इन शब्दों का अर्थ बताओ—निबुकि, हहआई, मरुत, अवशा, निमिष।
३—इन शब्दों के खड़ी बोली के रूप क्या हैं:—मुसकाना, मह, भा, बाढ़ी, मारहि, माहीं, उबारी।

रस-अलंकार—

१—तुम्हारे मनमे हनुमानजी के कृत्य को पढ़कर आश्चर्य का भाव उत्पन्न हुआ या भय का ? यदि आश्चर्य हुआ तो यहाँ अद्भुत रस और भय होने पर भयानक रस माना जायगा। अध्यापक की सहायता से इसके बारे में ज्ञान प्राप्त करो। रस ६ होते हैं—शृंगार, वीर, हास, करुण, रौद्र, वीभत्स, भयानक, करुण, शान्त।

रचना—

प्रसग सहित अर्थ लिखो —

१—ताकर दूत सिरजा।
जरा न सो गिरजा

२—दृष्टि प्रेरित लाग अकाश।

आदेश

रामचरित मानस मे जो प्रसग तुम्हे अच्छा लगे, उसका पाठ किया करो।

———

[२६]

खेल और व्यायाम

[बच्चे स्वभाव से ही खेलने में बहुत तत्पर रहते हैं। बड़ा होने पर मनुष्य सामाजिक कामों में इतना उलझ जाता है कि खेल और व्यायाम की ओर वह ध्यान नहीं देता। इसका कारण यही है कि वह शरीर की बनावट और व्यायाम आदि के महत्व को नहीं जानता। इस लेख को इसी दृष्टि से लिखा गया है कि पाठकों के मन में खेल और व्यायाम के लिए रुचि उत्पन्न हो और वे अपने स्वास्थ्य और शरीर को सुदृढ़ बनावें।]

संकुलता, शुचिता, औदार्य, शौर्य, कुशाग्र, प्रतियोगिता

यदि क्रियाशीलता ही जीवन का लक्षण है तो खेल-कूद मनुष्य की सबसे स्वाभाविक क्रिया है। मनुष्य-जीवन का आरंभ ही खेल से होता है। बचपन का अधिकांश समय खेल-कूद में ही व्यतीत होता है। परंतु उम्र के साथ ज्यों-ज्यों मनुष्य-जीवन की संकुलता बढ़ती जाती है और व्यस्तता आती जाती है त्यों त्यों वह खेल कूद की स्वाभाविकता से दूर होता जाता है। बचपन के स्वच्छंद वातावरण में न तो जीविका की चिन्ता रहती है और न उत्तर-दायित्व का भार। इसलिये बालक अपने साथियों के साथ खेलते कूदते आनंद से दिन बिताया करता है। आगे चलकर उसके ऊपर इतने भार आ जाते हैं कि वह निश्चित होकर बच्चों की तरह नहीं खेल सकता। फिर भी स्वस्थ रहने के लिए कुछ न कुछ शारीरिक श्रम आवश्यक होता है। इसलिये वह या तो अकेले-अकेले कुछ व्यायाम करना पसंद करता है अथवा कुछ समवयस्क साथियों के साथ क्लब में सामूहिक रूप से खेलना। यद्यपि इसमें

फुटबाल   दण्ड-बैठक   कबड्डी
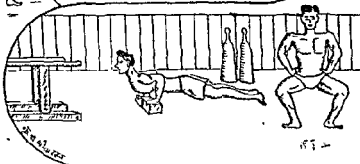
बचपन की सी स्वाभाविकता नहीं रहती, तथापि इस कृत्रिमता से भी स्वास्थ्य-वृद्धि होती है। कुछ न करने से कुछ करना तो अच्छा ही है। कहा भी है, 'अरध तजहिं बुध सरबस जाता।' इसी संसार में अधिकांश लोग ऐसे भी हैं जिन्हें खेल कूद और व्यायाम का अवकाश ही नहीं मिलता। वर्तमान जीवन इतना व्यावसायिक हो गया है कि पैसे के लिये लोग स्वास्थ्य की तनिक भी चिन्ता नहीं करते। यही कारण है कि वर्तमान युग में मनुष्य की आयु बहुत घट गई है। पुराने समय में ऐसी बात न थी। लोग सामूहिक रूप से खेलते थे। और नहीं तो नियमित रूप से अलग-अलग व्यायाम ही करते थे। तभी तो उनकी आयु भी लम्बी होती थी। यदि यह सच है कि मनुष्य-योनि बहुत पुण्य से मिलती है तो हमें अपनी आयु को अधिक से अधिक बढ़ाकर इसका सुन्दर उपयोग करना चाहिये। दीर्घायु के लिए व्यायाम अथवा खेल-कूद आवश्यक है।

इसके अतिरिक्त वर्तमान युग इतना यौद्धिक हो गया है कि शारीरिक विकास रुकने लगा है। मानव-बुद्धि नाना प्रकार की मशीनों का आविष्कार करके कम से कम शारीरिक श्रम करना चाहती है। इस अवकाश का सर्वोत्तम उपयोग तभी सम्भव है जब शरीर को भी स्वस्थ और सबल रखा जाय। कहा भी है कि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन रहता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि पहलवान ही सबसे अधिक बुद्धिमान होता है। स्वस्थ मन का अर्थ कुशाग्र बुद्धि ही नहीं बल्कि शुचिता, धैर्य, औदार्य, शौर्य आदि अनेक मानसिक गुणों का समुच्चय भी है। निश्चय ही ये गुण स्वस्थ शरीर में ही सम्भव हैं। कवीन्द्र रवीन्द्र इस शरीर को देव-मंदिर कहा करते थे जिसमें ईश्वर निवास करता है। इस देव-मन्दिर को स्वच्छ, सुंदर और सुदृढ़ रखना हमारा परम कर्तव्य है। इस कर्तव्य का आरंभ व्यायाम और खेल से ही होता है।

जो लोग पढ़ने-लिखने का काम अधिक करते हैं उनके लिये

व्यायाम अथवा खेल अति आवश्यक है। इसीलिए आजकल की शिक्षा-पद्धति में खेलों को अनिवार्य कर दिया गया है। फिर भी अनेक अध्ययन-प्रिय छात्र व्यायाम की ओर से उदासीन रहते हैं। लगातार बैठे-बैठे आँतों पर बल पड़ता है। इससे पाचन-शक्ति क्षीण होती है। प्राय: बैठ कर काम करने वाले मन्दाग्नि रोग से ग्रस्त होते हैं। इससे बचने के लिए छात्रों को व्यायाम अवश्य करना चाहिये। जो छात्र यह समझते हैं कि व्यायाम से समय नष्ट होता है उन्हें समझ लेना चाहिये कि व्यायाम में प्रतिदिन एक घंटा व्यय न करने से कभी कभी महीने भर के लिए चारपाई पकड़ लेनी पड़ती है और इस प्रकार मूल व्याज सहित सारा समय चुका देना पड़ता है। इसके अतिरिक्त व्यायाम के अभाव से बुद्धि भी क्षीण होती है। एक घंटा व्यायाम करने से शरीर और बुद्धि में इतनी शक्ति आ जाती है कि छः घंटे तक उत्साह के साथ अध्ययन किया जा सकता है। स्वामी रामतीर्थ जब पढ़ते-पढ़ते थक जाते थे तो थोड़ा व्यायाम कर लेते थे और फिर पढ़ने लगते थे। इस प्रकार वे अध्ययन के बीच में व्यायाम भी किया करते थे। कभी कभी वे कमरे में टहलते हुए पढ़ा या सोचा करते थे।

साधारणत: खेल और व्यायाम दो प्रकार के होते हैं—वैयक्तिक और सामूहिक। ऐतिहासिक दृष्टि से सामूहिक खेल आदिम युग से ही चले आ रहे हैं। आरंभ में लोगों का जीवन अत्यंत सामाजिक था। भोजन और मनोरंजन सामूहिक रूप से साथ-साथ होता था। इस प्रकार व्यायाम और मनोरंजन का अद्भुत सामंजस्य था। आज भी जंगली जातियों में यह आनंदोल्लास देखा जा सकता है। परंतु बसंत आदि कुछ महोत्सवों पर ही ऐसा होता है। यूनान में ओलम्पस नामक पहाड़ पर वर्ष भर में कुछ दिन के लिये सभी लोग एकत्र हुआ करते थे। खेल-कूद तथा व्यायाम-प्रदर्शन का आनंदप्रद कार्यक्रम चलता था। पाश्चमी देशों में

सामूहिक खेलों का विकास बहुत व्यापक रूप से हुआ। फलतः विभिन्न दलों के बीच प्रतियोगिताओं का भी समावेश किया गया। हाकी, फुटबाल, क्रिकेट आदि सामूहिक खेल इसी वर्ग के हैं। भारतवर्ष में वैयक्तिक व्यायाम का ही विकास अधिक हुआ। फलतः यहाँ योगासनों के क्षेत्र में अनेक प्रयोग किये गये। आसनों की प्रणाली इतनी वैज्ञानिक है कि इससे तन और मन दोनों का संस्कार होता है। परन्तु आसन की साधना के लिए सुयोग्य गुरु की आवश्यकता है और उसके अभाव में स्वतः अभ्यास करने से लाभ की जगह हानि की आशंका है। डंड-बैठक वैयक्तिक खेल के ही भीतर हैं।

कुछ लोग घरेलू खेलों को भी खेल के भीतर लेते हैं। इन खेलों से चुपचाप बैठकर समय तो काटा जा सकता है, परन्तु स्वास्थ्य सम्बन्धी सुधार असंभव है। इन्हें बुद्धिविलास ही कहना चाहिये। 'ताश' और 'कैरम बोर्ड' ऐसे ही खेल हैं। युवकों के लिये ये खेल व्यर्थ ही नहीं सर्वथा निषिद्ध भी हैं। ये खेल शुद्ध मनोरंजन के लिए होते हैं।

वियोगी हरिजी ने खेलों को तीन भागों में विभाजित किया है—उत्पादक, अनुत्पादक और अर्थनाशक। उत्पादक खेल उत्तम श्रेणी में आते हैं, जैसे बागवानी। इसमें मेहनत, मनोरंजन और आर्थिक लाभ साथ-साथ होता है। इसमें बाल, युवक, वृद्ध सभी भाग ले सकते हैं। अनुत्पादक खेलों में पचीसों देशी खेल हैं। कबड्डी इन खेलों में श्रेष्ठ है। अनुत्पादक खेल में कोई आर्थिक लाभ तो नहीं होता, परन्तु उसपर कोई आर्थिक व्यय भी नहीं होता। अर्थनाशक खेलों में क्रिकेट है। इसमें धन का व्यय बहुत होता है। इसे धनिक वर्ग का ही भूषण समझना चाहिये। भारत जैसे देश के लिये ऐसे विलासी खेल की आवश्यकता नहीं है। हाकी और फुटबाल, टेनिस, बैडमिंटन जैसे विदेशी खेल भी ऐसे

ही हैं जिनमें सामान के ऊपर जितना रुपया खर्च होता है उतना भोजन के ऊपर किया जाता तो कुछ अधिक लाभ होता। इस प्रकार सबसे अच्छे खेल वही हैं जिनमें आर्थिक लाभ, स्वास्थ्य-लाभ, मनोरंजन, सहकारिता, कला-अभ्यास आदि एकत्र हों। सामूहिक खेलों में अनुशासन, विनय और सहकारिता की टेव पड़ती है।

वर्तमान युग में खेलों को सभ्यता और संस्कृति का अंग बना दिया गया है। खिलाड़ियों का व्यवहार, कला-प्रदर्शन, मैत्री-भावना आदि किसी देश की संस्कृति की सूचना देते हैं। खेल में विजय प्राप्त करना किसी जाति की विकासोन्मुखी रुचि का प्रतीक है। इसलिये लोग 'क्रिकेट टेस्ट मैच' के फल को बड़ी उत्सुकता से देखा करते है। आजकल सुसंस्कृत व्यक्ति के अनेक गुणों मे से खेल की रुचि भी एक है। हमारे प्रधान मंत्री नेहरूजी इस दृष्टि से भारत के सबसे सुसंस्कृत नागरिक हैं। इंगलैंड की शिक्षा ने उनके ऊपर इतना प्रभाव तो अवश्य ही डाला है। सुनते हैं कि आज भी वे कुछ समय तक शीर्षासन करते हैं। इस प्रकार खेल के क्षेत्र मे भी उनमें पश्चिमी और पूर्वी आदर्शों का अद्भुत समन्वय है।

अभ्यास

सामान्य प्रश्न—

१—साधारणतः खेल और व्यायाम कितने प्रकार के होते हैं—कौन-कौन खेल व्यक्तिगत है और कौन सामूहिक ?

२—खेल और व्यायाम मनुष्य-जीवन के लिये आवश्यक क्यों है ?

३—खेलों के कौन-कौन से तीन भाग हैं ? उदाहरण सहित प्रत्येक को समझाओ।

शब्दाध्ययन—

अर्थ बताओ—

क्रियाशीलता, संकुलता, कृत्रिमता, शांति, वैयक्तिक, अनुत्पादक, समुच्चय, औदार्य, शौर्य।

व्याकरण—

१—सन्धि विच्छेद करो—

आनन्दोल्लास, महोत्सव, सर्वोत्तम, अनुत्पादक, विकासोन्मुखी।

२— समास बताओ—

खेल कूद, अर्थनाशक, सुसंस्कृत, कला-अभ्यास।

३—पदव्याख्या करो—

क्रियाशीलता, औदार्य, प्रतिदिन, उन्हें।

४—वाक्य विग्रह करो—जो लोग पढ़ने-लिखने का काम अधिक करते हैं उनके लिए खेल अथवा व्यायाम अति आवश्यक है।

रचना—

अर्थ लिखो—

१— वर्तमान युग में खेलों को सभ्यता और संस्कृति············अनेक गुणों में से खेल की रुचि भी एक है।

२—'इस प्रकार खेल के क्षेत्र में भी उनमें पूर्वी और पश्चिमी आदर्शों का अद्भुत समन्वय है'—का क्या अर्थ है?

आदेश

ऊपर बताये खेलों में से जो तुम्हें अच्छा लगे, उसका अभ्यास करो।

———

[३०]

देश-दशा

[कहाँ हमारी शस्य-श्यामला, रत्नगर्भा, भारतभूमि, और कहाँ यह भयंकर दारिद्रय, महँगी और अनीति का ताण्डव नृत्य! देश में प्रकृति ने अपनी सौन्दर्य राशि को चारों ओर बिखेर रखा है, पर गरीबी के कारण उस अलौकिक सौन्दर्य की ओर ध्यान किसका जाता है? इसी मर्मवेदना को व्यक्त करने के लिए श्री रामनरेश त्रिपाठी ने सन् १६२१ में 'पथिक' नाम का एक खण्ड काव्य लिखा था जिसमें गान्धी जी के अहिंसात्मक मार्ग का अवलम्बन करके पराधीनता को दूर करने का सन्देश दिया था। यह अंश 'पथिक' के तीसरे सर्ग से लिया गया है जिसमें पथिक देश का भ्रमण करके उसके सौन्दर्य और उसकी गरीबी दोनों का प्रत्यक्ष दर्शन करता है।]

अनति, दहन-स्वभाव, आघोस, उदधि, वासर

[१]

फिर उसने विस्तृत स्वदेश की ओर दृष्टि निज फेरी,
कहा, 'अहा, कैसी सुन्दर है जन्मभूमि यह मेरी।'
भक्ति, प्रेम, श्रद्धा से उसका तन पुलकित हो आया,
रोम-रोम में सेवा व्रत का परमानन्द समाया॥

[२]

छूता हुआ गांव की सीमा अति निर्मल जल वाला,
बहता है अविराम निरन्तर कलकल स्वर से नाला।
अनति दूर पर हरियाली से लदी खड़ी गिरि माला,
किन्तु नहीं इससे हृदयों में है आनन्द-उजाला॥

[३]

कोकिल का आलाप पपीहे की विरहाकुल बानी।
तोता-मैना का विवाद, बुलबुल की प्रेम कहानी॥
मधुर प्रेम के गीत तरुनियाँ गातीं नित निगतीं।
क्या ये क्षण भर को न किसी के मन का कष्ट भुलातीं?

[४]

सरिता का चुपचाप सरकना, दहन स्वभाव अनल का,
झरनों का अविराम नाद, कलकल रव चंचल जल का।
मधुरालय, प्रलाप, विपुल आघोष क्षुब्ध वारिधि का,
भिन्न-भिन्न भाषा मनुष्य की, उच्चारण बहुविधि का॥

[५]

किन्तु देश के लोग किसी निद्रा में ज्यों सोते हैं,
किसी विनोद-प्रमोद में नहीं वे तत्पर होते हैं।
किसी असीम विषाद-उदधि में हैं निमग्न जन सारे,
या हैं किसी व्याधि से पीड़ित उदासीन मन मारे।

[६]

धधक रही सब ओर भूख की ज्वाला है घर-घर में,
मांस नहीं है, मिटी साँस है शेष अस्थि-पिंजर में।
अन्न नहीं है, वस्त्र नहीं है, रहने का न ठिकाना,
कोई नहीं किसी का साथी अपना और बिगाना॥

[७]

लाखों नहीं करोड़ों ऐसे हैं मनुष्य दुख पाते,
जीवन भर जो जठरानल में जल जल कर मर जाते।
हाय हाय कर लोग साँझ को निराहार सो जाते,
एक बार भी रात दिवस में पेट नहीं भर पाते॥

[८]

बड़े सवेरे से संध्या तक कर के कठिन मजूरी,
सुख के बदले में पाते हैं आयु मजूर अधूरी।
चिन्तित हैं, आश्चर्य चकित हैं, कृषक विकल हैं दुख से,
कौन काढ़ लेता है उनका कौर अचानक मुख से ?

[९]

झूठ, दम्भ, विश्वासघात, छल से पर धन हरते हैं,
कोई भी अनीति करने में लोग नहीं डरते हैं।
सद्‌गुण जो मनुष्य-जीवन की उन्नति का साधक है,
उसकी ही उन्नति का अब तो पेट हुआ बाधक है॥

[१०]

निज उन्नति का जहाँ सभी जन को समान अवसर हो,
शान्तिदायिनी निशा और आनन्द भरा वासर हो।
उसी सुखी स्वाधीन देश में मित्रों ! जीवन धारो,
अपने चारु-चरित से जग में प्राप्त करो फल चारो॥

—रामनरेश त्रिपाठी

परिचय

त्रिपाठी जी सुल्तानपुर जिले के कोइरीपुर गाँव के रहने वाले हैं। खड़ी बोली के उच्च कोटि के कवियों में आप की गणना है। आप की कविता में देशप्रेम और राष्ट्रीयता की भावना पर्याप्त मात्रा में पाई जाती है। यद्यपि आपनी स्वच्छन्द शैली में प्रेममूलक खण्ड-काव्य लिखे हैं, पर उनके भीतर राष्ट्रप्रेम और गान्धीवादी विचारों की धारा ही प्रवाहित होती है। कविता में भाषा की सफाई और प्रसाद गुण की ओर आपने बहुत अधिक ध्यान दिया है, परन्तु उस काल के अन्य कवियों की भाँति इनमें नीरसता और उपदेशात्मकता उतनी नहीं है। कवि के साथ ही आप सिद्ध समालोचक भी हैं। पथिक,

मिलन और स्वप्न इनके खण्ड-काव्य और कविता-कौमुदी और तुलसीदास साहित्य इतिहास ग्रंथ हैं।

अभ्यास

सामान्य प्रश्न—

१—पथिक ने अपने देश के प्राकृतिक सौन्दर्य का जो वर्णन किया है, अपने शब्दों में कहो।

२—इस सौन्दर्य की ओर लोगों का ध्यान क्यों नहीं जाता ?

३—जनता की गरीबी का वर्णन कवि ने किस प्रकार किया है ?

४—कविता के अन्तिम पद में पथिक क्या कामना करता है ?

५—हमारे देश में कौन भिन्न-भिन्न भाषायें बोली जाती हैं ?

शब्दाध्ययन—

१—इस कविता मे संस्कृत के तत्सम शब्दों की अधिकता है या तद्भव शब्दों की ?

२—हरिऔध की कविता 'फूल और काँटा' की भाषा से इस कविता की भाषा की तुलना करो।

३—पर्यायवाची शब्द बताओ–उदधि, तरुणी, रात दिवस।

रस-अलंकार—

१—इस कविता को पढ़ कर तुम्हारे मनमें देश की दशा सुधारने के लिए 'उत्साह' उत्पन्न होता है या नहीं ? यदि हाँ, तो इसमें वीर रस होगा क्योंकि वीर रस का स्थायी भाव उत्साह है।

२—इस कविता मे उपमा अलंकार ढूढ़ो।

रचना—

चौथे और दसवे पद की सन्दर्भ सहित व्याख्या लिखो।

आदेश

यदि तुम कविता लिखना जानते हो तो इसी कविता के ढंग पर देश की वर्तमान दशा का चित्रण करते हुए एक कविता लिख कर अपने अध्यापक को दिखाओ।

---

[३१]

महात्मा गान्धी का सन्देश

[गान्धीजी का जीवन ही उनका सबसे बड़ा सन्देश है। उन्होंने जो कुछ कहा उसे स्वयं अपने जीवन में चरितार्थ भी किया। अतः उनके सन्देश को जानने के लिए उनके जीवन के कार्यों का विश्लेषण ही अधिक उपयुक्त है। गान्धीजी के साथ व्यक्तिगत संबंध होने के कारण विद्वान लेखक आचार्य नरेन्द्रदेव ने उनके जीवन लक्ष्य और कार्य पद्धति को बहुत अच्छी तरह समझा था जिसे उन्होंने यहाँ व्यक्त किया है।

भूकम्प मापक-यन्त्र, नैवेद्य साम्प्रदायिक, प्रतिष्ठित

महात्मा जी इस देश के सर्वश्रेष्ठ मानव थे, इसलिए हम उनको राष्ट्रपिता कहते हैं। हमारे देश में समय समय पर महापुरुषों ने जन्म लिया है और इस जाति को पुनरुज्जीवित करने के लिए नूतन सन्देश दिया है। इस में तनिक भी सन्देह नहीं कि अन्य देशों में भी महापुरुष उत्पन्न हुये हैं, लेकिन मेरी अल्प बुद्धि में महात्मा गान्धी ऐसा अद्वितीय महापुरुष केवल भारतवर्ष में ही जन्म ले सकता था और वह भी बीसवीं शताब्दी में। उन्होंने इस युग की अभिलाषाओं और महान उद्देश्यों का सच्चा प्रतिनिधित्व किया है। इसीलिये वे भारतवर्ष के ही नहीं, बल्कि समस्त संसार के महापुरुष थे। यद्यपि महात्मा गान्धी राष्ट्रीयता के व्रती थे, भारतीय संस्कृति के पुजारी थे तथा भारतीय राष्ट्रीयता के प्रबल समर्थक थे, किन्तु उनकी राष्ट्रीयता उदारता से पूर्ण थी। वह संकुचित नहीं थी। महात्मा जी का हृदय विशाल था। जिस प्रकार भूकम्प-मापकयन्त्र पृथ्वी के मृदु कम्पन को भी जान
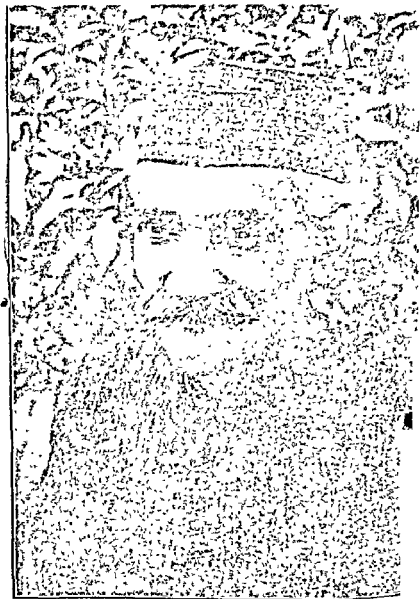
आचार्य नरेन्द्रदेव

लेता है, उसी प्रकार मानव-जाति की पीडा की क्षीण रेखा भी उनके हृदय मे अंकित हो जाती थी। हमारे देश मे भगवान बुद्ध हुए तथा अन्य धर्मों के प्रवर्तक भी हुए, किन्तु साधारण जनता के जीवन को ऊंचा करने मे कोई समर्थ नहीं हो सका। महात्मा जी ने ही साधारण जनता मे मानवोचित स्वाभिमान उत्पन्न किया। उन्होंने ही भारतीय जनता को इस व त के लिए उत्साहित किया कि वह ब्रिटिश साम्राज्यशाही का विरोध करे और वह भी हिंसात्मक शक्ति का प्रयोग कर के नहीं। गान्धी जी ने सामाजिक समस्याओं को हल करने के लिए अहिंसा को एक साधन बनाया। राजनीतिक क्षेत्र मे अपने महान ध्येय की प्राप्ति के लिए उसका सफल प्रयोग करना महात्मा गान्धी का ही काम था। उनकी अहिंसा की शिक्षा अद्भुत, बेजोड और निराली थी। सामाजिक और आर्थिक विषमता को दूर कर, मनुष्य मे मनुष्यता भर कर, सब को ऊँचा उठा कर, जाति पाति और सम्प्रदाया के बन्धनों को तोड कर ही हम अहिंसा को सच्चे अर्थों मे प्रतिष्ठा कर सकते हैं। यदि किसी ने यह शिक्षा दी तो गान्धीजी ने ही। इसलिए यदि हम उनके सच्चे अनुयायी होना चाहते हैं तो समाज से इस भेद-भाव का, छुआछूत का, गरीबी का, दरिद्रता को सदा के लिए उन्मूलन कर के ही हम सच्चे अहिंसक कहला सकते हैं। यही महात्मा जी की विशेषता थी।

हमारे देश की यह प्रथा रही है कि किसी महापुरुष के निधन के बाद हमने उसे देवता की पदवी से विभूषित किया, समाधि और मन्दिर-मजार बनवाये। उसकी मूर्ति को मन्दिर मे प्रतिष्ठित किया या समाधियाँ बना कर उस पर प्रेम और श्रद्धा के फूल चढाये और इतने ही से सतुष्ट हो गये। इस प्रकार से भारतवासियों ने अनेक महापुरुष की केवल उपासना और आराधना करके उनके मूल उपदेशों को भुला दिया। अत हम

आज महात्मा गान्धी को देवता की उपाधि न दें, क्योंकि देवत्व से भी ऊँचा स्थान मानवता का है। मानव की आराधना और उपासना का ढंग भिन्न है, दीपक नैवेद्य से उसकी पूजा नहीं होती। अपने हृदयों को निर्मल कर के उनके बताये हुए मार्ग पर चलना ही किसी महापुरुष की सच्ची उपासना है। यदि हम महात्मा गान्धी के सच्चे अनुयायी कहलायें तो हमारा यह पुनीत कर्त्तव्य है कि अपने प्रेम और श्रद्धा के भावों का प्रदर्शन करने के साथ-साथ हम उनका जो अमर सन्देश है, उस पर अमल करें।

महात्मा जी का सन्देश केवल भारतवर्ष के लिए ही नहीं, वरन् वर्तमान संसार के लिए है क्योंकि आज संसार का हृदय व्यथित है। एक नये महायुद्ध की रचना होने जा रही है। उसकी पूर्व सूचनायें मिल रही हैं। ऐसे अवसर पर संसार को एक नूतन आदर्श और उपदेश की आवश्यकता है। महात्मा जी का उपदेश जीवन का उपदेश है, मृत्यु का नहीं। जो पश्चिम के राष्ट्र आज संकुचित राष्ट्रीयता के नाम पर मानव-जाति का बलिदान करना चाहते हैं, जो सभ्यता और स्वाधीनता का विनाश करना चाहते हैं, वे मृत्यु के पथ पर बढ़ रहे हैं, वे मृत्यु के अग्रदूत हैं। अतः यदि वास्तव में हम समझते हैं कि हम महात्मा जी के अनुयायी हैं तो हमें प्रतिज्ञा करनी चाहिये कि हम उनके बताये हुए मार्ग पर चलेंगे जो जनतन्त्र का, समाज में समता लाने, विविध राष्ट्रों, धर्मों और सम्प्रदायों में मेल पैदा करने का मार्ग है। यदि हम ऐसा करेंगे तो सारा संसार हमारा अनुसरण करेगा।

परिचय

महात्मा गांधी के निधन के कुछ दिन बाद उत्तर प्रदेशीय धारा-सभा में आचार्य नरेन्द्रदेव जी ने जो शोकोद्गार प्रकट किया था, उसी का साराश यहां दिया गया है। आचार्य जी भारतवर्ष के गण्यमान नेताओं और विद्वानों में से एक हैं। प्रयाग विश्वविद्यालय से एम० ए०, एल० एल० बी० पास करने के बाद आप काशी विद्यापीठ

म प्रधानाचार्य नियुक्त हुए । वहां रहते हुए आप स्वतन्त्रता संग्राम के सिलसिले में कई बार जेल गये । आप समाजवादी दल के संस्थापकों और नेताओं में से प्रमुख हैं । इस समय आप लखनऊ विश्वविद्यालय तथा काशी विद्यापीठ के कुलपति हैं । आप अंगरेजी और हिन्दी के अतिरिक्त उर्दू, फ्रेञ्च, संस्कृत, पाली, प्राकृत और अपभ्रंश के अगाध विद्वान हैं । राजनीति, समाज शास्त्र और बौद्ध दर्शन संबंधी आप की अनेक पुस्तकें छप चुकी हैं ।

अभ्यास

सामान्य प्रश्न—

१—सिद्ध करो कि महात्मा जी इस देश के सर्वश्रेष्ठ मानव थे ?

२—महात्मा जी की क्या विशेषता थी ?

३—महात्मा जी का संदेश केवल भारत के लिए ही नहीं वरन् वर्तमान संसार के लिये है, यह कथन कहां तक सही है ? सिद्ध करो ।

शब्दाध्ययन—

नीचे लिखे शब्दों का अर्थ बताओ ।—

पुनरुज्जीवित, संकुचित, विषमता, उन्मूलन, अद्वितीय, मानव चित ।

व्याकरण—

सन्धि विच्छेद करो—

पुनरुज्जीवित, मानवान्वित, निर्मल ।

समास बताओ—

राष्ट्रपिता, मानवान्वित, अमदूत ।

रचना—

गद्यार्थ लिखो ।—

महात्मा जी इस देश के ... प्रकृति हो जाती थी ।

आदेश

महात्माजी की 'आत्म कथा' अवश्य पढ़ो । उसके अनुसार आचरण करने का प्रयत्न करो ।

---

[३२]

देशद्रोह का दण्ड

[कश्मीर पर पाकिस्तान की सहायता से सीमाप्रान्त के कबीलेवाले अफरीदियों आदि ने हमला कर दिया था। कश्मीर के प्रधान मंत्री शेख अब्दुल्ला ने भारत सरकार की सहायता से टक्कर उस हमले का सामना किया और आक्रमणकारियों को बहुत पीछे हटा दिया। शेख अब्दुल्ला और उनके दल—नेशनल कान्फ्रेन्स के प्रभाव से कश्मीर की हिन्दू-मुस्लिम जनता ने एक हो कर इस काम में सैनिकों की कितनी सहायता की और उन में देश प्रेम किस सीमा तक उत्पन्न हो गया, यही बात इस एकांकी में चित्रित की गयी है।]

समवेत-गीत, दीप्ति, कामयाबी, मुख-मुद्रा

[कश्मीर के पूंच इलाके की एक सुरम्य घाटी में बसा एक गांव। गांव के पश्चिमी सिरे पर एक साधारण घर जिसके पास ही खलिहान है और उसमें गांव के लोगों ने फसल काट कर रखी है। घर के बरामदे में बूढ़ा नूर मुहम्मद चौकी पर बैठ कर हुक्का पी रहा है। रह-रह कर खाँसता है। एक ओर से पड़ोसी राजेन्द्र का प्रवेश। रात के आठ बजे हैं। बरामदे में एक ताखे पर एक गंदी लालटेन जल रही है।]

राजेन्द्र—मुहम्मद चाचा, सलाम।

मुहम्मद—(राजेन्द्र को गौर से देख कर) खुश रहो राजेन्द्र! श्रीनगर से कब लौटे हो बेटा?

राजेन्द्र—आज ही शाम को आया चाचा।

मुहम्मद—महीनों बाद लौटे हो इस बार और यह तुम्हारा लिबास तो बिलकुल सिपाही जैसा मालूम पड़ रहा है; क्या पल्टन में भरती हो गये?

राजेन्द्र—जी नहीं, नेशनल कान्फरेन्स की ओर से छिप कर दुश्मनों का मुकाबला करने के लिए कश्मीरी जवानों और औरतों की स्वयं-सेवक सेना बनी है। उसी में ट्रेनिंग लेने गया था।

मुहम्मद—बहुत अच्छा किया राजेन्द्र, तुमने तो सुना ही होगा कि दुश्मन हमारे नजदीक उस सामने वाले पहाड़ के उस ओर तक आ गये हैं। हमारी किस्मत अच्छी थी बेटा, जो ठीक वक्त पर हिन्दुस्तानी फौज यहाँ आ गयी। जब से हिन्दुस्तानी और कश्मीरी पल्टनों का पड़ाव हमारे गाँव के पास पड़ा है, तब से हमारे दिल को कुछ तसल्ली हुई है। बेटा, नहीं तो हम किसानों की वही हालत होती जो पूंच के सरहदी गाँवों के किसानों की हुई है।

राजेन्द्र—लेकिन चाचा, हमारे लिए सुख की नींद सोने का दिन नहीं आया है। कबायली लुटेरे अकेले नहीं हैं। उनके साथ पाकिस्तानी सेना की सारी ताकत लगी हुई है और इधर हमारे पास सामान की बहुत कमी है। इसलिए गाँव वालों की मदद से ही हिन्दुस्तानी सेना कामयाब हो सकती है।

मुहम्मद—बेटा, राजेन्द्र, मैं तो बूढ़ा हो चला हूँ, और मेरा बेटा भी

[तब तक गाँव में एक ओर से लड़कियों के समवेत-गीत और 'कश्मीर जिन्दाबाद, शेख अब्दुल्ला जिन्दाबाद, पंडित नेहरू जिन्दाबाद' के नारों का स्वर सुनाई पड़ता है। मुहम्मद आश्चर्य से सुनता है और उसकी आँखें चमक उठती हैं।]

मुहम्मद—राजेन्द्र, यह कैसी आवाज है जो इस बूढ़े की नसों में आग की मौजें उठ रही हैं? (उठ खड़ा होता है)

राजेन्द्र—चाचा, मैं आप से यही तो बताने आया था कि इस गाँव के सभी नवजवान छापामार स्वय-सेवक सेना में भरती होने

जा रहे हैं और बहुत सी लड़कियाँ भी जनाना दस्ते में भरती होना चाहती हैं। मगर ......

मुहम्मद—मगर क्या बेटा ?

राजेन्द्र—छापेमार सेना में भरती होने पर न जाने गांव छोड़ कर कहाँ-कहाँ जाना पड़े ! फिर गांव की रखवाली कौन करेगा चाचा ? इसलिए मैंने सोचा है कि गांव की मजबूत औरतों का एक जनाना छापेमार दस्ता तैयार किया जाय जो बन्दूक और हथगोले चलाना सीखें और गांव में रह कर ही गांव की रक्षा करने में बड़े बूढ़ों की मदद करें। मेरी बहन चन्द्रा और आप की सकीना ने छापेमार दस्ते के संगठन और गाँव की रखवाली की जिम्मेदारी अपने ऊपर ली है।

मुहम्मद—क्या; सच ? (खुशी से उसकी आँखें नाचने लगती हैं।)

राजेन्द्र—जी हाँ, और इस में आप की रजामन्दी लेने मैं आप के पास आया था चाचा ! [अचानक कहीं दूर छापेमार दस्तों का बिगुल बजता है। मुहम्मद चौंक जाता है। राजेन्द्र घबड़ा कर कहता है—] चाचा ! हमारे दस्ते का बिगुल बज रहा है। कोई खतरा आ पहुंचा है शायद। पता नहीं क्या हो। मैं अपनी बहन चन्द्रा को आप की शरण में छोड़े जा रहा हूँ। आप ने उसे और सकीना को सदा एक नजर से देखा है। अच्छा चाचा, मैं चला—(दौड़ कर जाना चाहता है।)

मुहम्मद—(कुछ सोच कर) राजेन्द्र, अरे सुनो तो !

राजेन्द्र—क्या बात है चाचा !

मुहम्मद—(पास जा कर) कोई जरूरत पड़ने पर मैं तुम्हें कहाँ खोजूँगा भला ?

राजेन्द्र—(झुक कर बूढ़े के कान में कुछ कहता है, फिर जाते

हुए) यह और किसी को मालूम न होने पाये चाचा, अच्छा सलाम। (दौड़ जाता है। मुहम्मद कुछ सोचने लगता है। एका-एक उसके मुंह से निकल पड़ता है—'आह कश्मीर' 'मेरे प्यारे कश्मीर' और अपनी हथेली पर सिर रख कर फिर चौकी पर पैर लटका कर बैठ जाता और हुक्का पीने लगता है। उसकी मुख-मुद्रा अत्यन्त गम्भीर और चिन्तापूर्ण दिखलाई पड़ती है। अचानक एक ओर से दबे पावों एक सैनिक वेशधारी नवयुवक का प्रवेश; हाथ में राइफल।)

मुहम्मद—(आहट से चौंक कर) कौन ?

नवागंतुक—अब्बा; मैं हूँ अहमद ! (पास आ जाता है।)

मुहम्मद—(प्रसन्नता से गद्‌गद्‌ हो कर) बेटा अहमद! [छाती से लगा लेता है, आँखों से आँसुओं की धारा फूट बहती है। अहमद की आँखें भी भीग जाती हैं।]

अहमद—(अपने को धीरे-धीरे अलग करता हुआ) अब्बा, मेरे पास वक्त नहीं है; मैं ..

मुहम्मद—(काँपता हुआ) वक्त ? बेटा, तुम तीन महीने से घर से गायब थे। तुम्हारी माँ तुम्हारी याद में रोती-रोती चल बसी, और तुम आये भी तो वक्त का कैदी बन कर ? खैर, तुम्हें इस लिबास में देख कर मुझे बड़ी खुशी हुई। मैं अभी-अभी तुम्हारे ही बारे में सोच रहा था। क्या तुम भी श्रीनगर में थे बेटा, पर राजेन्द्र ने तो तुम्हारे बारे में कुछ भी नहीं बताया।

अहमद—अब्बा, एक बार तो श्रीनगर के पास तक जा कर हम लोगों को लौट आना पड़ा; मगर अब की बार हमारी ताक़त बहुत बड़ी है। इस बार हम हिन्दुस्तानी सेना को भगा कर ही दम लेंगे।

(हँसता है। मुहम्मद के हाथ से उसका हुक्का छूट कर

गिरता और ध्वनि के साथ फूट जाता है। यह काँपने लगता और माथे से पसीने की बूँद टलने लगती है।)

अहमद—आप को हो क्या गया अब्बा; और हाँ अभी अभी आप राजेन्द्र के बारे में कुछ कह रहे थे। उसकी बहन चन्द्रा कहाँ है ?

मुहम्मद—(गौर से बेटे की ओर देख कर) क्यों ? यहीं तो है। क्या बात है ?

अहमद—मैं इसी के लिए यहाँ आया हूं अब्बा ! मैं उसे पकड़ कर ले जाऊँगा और उससे शादी करूंगा।

मुहम्मद—(सँभल कर अत्यन्त सावधानी से) पर बेटा, गाँव वालों के हाथों से छीन ले जाना हँसी-खेल नहीं है। और तुम तो अकेले दिखलाई पड़ते हो ?

अहमद—मैं अकेला नहीं हूँ अब्बाजान ! मेरे साथ कबालियों का एक पूरा दस्ता है। मैं ही उन्हें गुप्त रास्ते बताता हुआ यहाँ तक लाया हूँ।

मुहम्मद—मगर वे हैं कहाँ ? खलिहान में तो होंगे नहीं, क्योंकि वहाँ गाँव वाले हैं।

अहमद—(कुछ हिचकता हुआ) जी वो······(झुक कर बाप के कान में कुछ कहता है।)

मुहम्मद—अच्छा ! समझा ! अगर मेरा कहा मानो अहमद, तो एक बात कहूँ। राजेन्द्र अभी आया था, चन्द्रा को मेरे सुपुर्द कर के कहीं बाहर चला गया है। तो. कहो तो चन्द्रा को मैं बुलाता आऊँ। उसके बाद ही तुम लोग गाँव पर हमला करो। नहीं तो, कौन जाने शोरगुल में चन्द्रा कहीं निकल ही भागे !

अहमद—(खुश हो कर बाप से लिपटता हुआ) अब्बा, आप जरूर जाइये, जल्द जाइये, अभी जाइये।

मुहम्मद—(जाता हुआ) मगर इतना याद रखो, जब तक मैं लौटूं नहीं, यहाँ से कहीं न जाओ; नहीं तो सब खेल बिगड़ जायगा। मैं दो मिनट में लौटता हूँ।

अहमद—आप जाइये, मैं कहीं नहीं जाऊंगा।

[मुहम्मद चला जाता है। अहमद राइफल को बरामदे के एक कोने में रख देता और बेसब्री से टहलने लगता है। चारों ओर नजर दौड़ाता और घर में दरवाजे से झाँक कर पुकारता है, 'सकीना, ओ सकीना!' कोई उत्तर नहीं मिलता। वह परीशान दिखलाई पड़ता है। रह-रह कर उसकी आँखें कभी खलिहान की ओर और कभी गाँव की ओर मुड़ जाती हैं। तब तक मुहम्मद आता दिखलाई पड़ता है।]

अहमद—क्या खबर है अब्बा!

मुहम्मद—सकीना और चन्द्रा दोनों साथ ही थीं बेटा! उन्होंने कहा है कि वे अभी आ रही हैं। चलो, यह अच्छा ही है कि बिना मेहनत तुम्हारा काम हुआ जा रहा है। (बरामदे के कोने से राइफल को उठाता है।) अच्छा बेटा, यह बन्दूक तुम्हें क्या पाकिस्तान से मिली है?

अहमद—जी हाँ, यों तो हम लोग आजाद कश्मीर के सिपाही कहे जाते हैं, मगर आजाद कश्मीर सरकार एक धोखे की टट्टी है, जिसकी आड़ से पाकिस्तान शिकार कर रहा है। इसी चालाकी की वजह से उसे कामयाबी भी मिलती जा रही है।

मुहम्मद—ठीक कहते हो अहमद! कामयाबी चालाकी से ही मिलती है। (बन्दूक को हाथ में लेकर उठाता और लालटेन की रोशनी में ले जाता है।) इसे कैसे चलाते हो बेटा? क्या इस उम्र में मैं इसे चलाना नहीं सीख सकता?

अहमद—(मुस्कराता हुआ) क्या नहीं सीख सकते? देखिये,

यों बन्दूक को तोड़ कर उसमें कारतूस भरते हैं। और देखिये, यह बन्दूक का घोड़ा है। इसके दबाते ही गोली छूट जाती है। पर निशाना लगाना जरा मुश्किल होता है।

मुहम्मद—निशाना ठीक न भी लगे तो किसी न किसी को तो लग ही सकता है बेटा!

अहमद—हाँ, यह तो है मगर अब्बा, ये दोनों अब तक नहीं आयीं, बड़ी देर हो रही है। हमारे दस्ते के लोग मेरी ही इन्तजारी में बैठे होंगे। मैं गांव की हालत का पता लगाने आया था कि······

मुहम्मद—एक बात पूछूं बेटा, (बन्दूक ले कर पीछे की ओर सरकता जा रहा है) पाकिस्तान का मकसद समझ में आता है, मगर तुम्हारा और कबायलियों का इन हमलों में क्या मकसद है?

अहमद—मेरा मकसद है चन्द्रा को हासिल करना, और कबायलियों का मकसद है धन लूटना······

मुहम्मद—चाहे वह हिन्दू या मुसलमान किसी का हो?

अहमद—जी?···जी···हाँ

[अचानक घर के एक ओर तेज सीटी बज उठती है। अहमद चौंक कर उधर देखता है। कश्मीरी छापेमार दस्तों के कई सैनिक बन्दूक ताने सामने आकर बरामदे को घेर लेते हैं।]

मुहम्मद—[चिल्ला कर] अहमद! खबरदार, तुम कश्मीर के दुश्मन हो, मेरे बेटे नहीं। मुल्क के साथ गद्दारी करने की सजा तुम्हें भुगतनी होगी और वह भी अपने बाप ही के हाथों—

[अहमद भौंचका हो कर कुछ नहीं समझ पाता है। मुहम्मद झपट कर उसकी ओर बढ़ता और बन्दूक का घोड़ा दबा

देता है। गोली छूटने के साथ ही अहमद गिर पड़ता है। मुहम्मद भी बंदूक लिये—दिये धक्के से गिर पड़ता है। खलिहान की ओर बन्दूकों की गड़गड़ाहट सुनाई पड़ती है राजेन्द्र भी दौड़ता आ जाता है।]

राजेन्द्र—(दूर से ही) 'चाचा ! चाचा, (पास आ कर देख कर) अरे, गोली किसने चलाई ? मैंने तो अहमद को पकड़ने का हुक्म दिया था ? कई आवाजें—मुहम्मद चाचा ने।

राजेन्द्र—मुहम्मद चाचा ने ? (लम्बी साँस ले कर मुहम्मद के पास बैठता और उसका सिर गोद में लेता है—) चाचा ! यह क्या तुमने किया ? तुमने जल्दीबाजी की चाचा, देखो तो १० कबायली मारे गये हैं, कई भाग रहे हैं, उनका पीछा किया जा रहा है, लेकिन तुम'' (उसकी आँखों में आँसू आ जाते हैं। अचानक मुहम्मद की बेहोशी दूर हो जाती है, वह आँखें खोल देता है।)

राजेन्द्र—चाचा, अहमद भैया की मामूली गलती के लिए तुमने इतनी बड़ी सजा दे दी '

मुहम्मद—बेटा राजेन्द्र—वह देश-द्रोही था और उसे देश-द्रोह का दण्ड मिलना ही चाहिये था। उसे जीने का हक नहीं था। और मैं ने खुद अपने कलेजे के टुकड़े को बेरहमी से काट लिया है, इसलिए मैं भी बच नहीं सकता'' बेटा—सकीना—को—देखना—(सिर लुढ़क जाता है, सब रोने लगते हैं]

पटाक्षेप

—सम्पादक

अभ्यास

सामान्य प्रश्न—

१—मुहम्मद के चरित्र कीविशेषतायें क्या हैं ?

२—कश्मीर के नवयुवकों ने अपने देश की रक्षा कैसे प्रकार कि ?

शिशु

[शिशु चाहे मनुष्य का हो या किसी अन्य प्राणी का, बहुत प्यारा होता है। उसका सौन्दर्य, उसका सरल स्वभाव, उसकी भोली बातें, सब कुछ आकर्षक होता है। सभी उसे प्रेम करते हैं। संसार से विरक्त रहने वाले लोग भी शिशु को देख कर मचल जाते हैं। ईसा और गाधी को बच्चे बहुत प्रिय थे। इस कविता में शिशु के इसी आकर्षक रूप का चित्रण है।]

न्यारा, मंजुता, निमग्न, इन्द्रजाल, अशक

[१]

धारा प्रेम-सागर की लाई शिशु को है यहाँ,
विधि ने बनाया क्या खिलौना एक न्यारा है।
न्यारा सब जग से है उसका अनूप रूप,
विकसित कंज के समान अति प्यारा है।
प्यारा वह मंजुता की मूर्ति सा किसे है नहीं
व्योम से गिरा हुआ क्या कोई लघु तारा है!
तारा लोक लोचन का सबका दुलारा मानो
माता के सनेह ने सगुण रूप धारा है।

[२]

छहर रही है एक सुन्दर नवीन छटा
सुमन-समान सुकुमार अंग अंग में।
आज कुछ और, कल और ही है मंजु छवि
मानो रंगता है कोई नित्य नये रंग में।

जान, जिन्हें जानने का दावा रहता है सदा
शिशु है निमग्न किस भाव की तरंग में।
सोच-सोच हार गया, समझ न पाया कभी
उछल रहा है यह कौन सी उमंग में।

[३]

आया अनजान, साथ लाया कुछ भी है नहीं
नेक भी किसी से नहीं जान पहिचान है।
रहता चकित है विलोक यह लोक नया
उसे यह विश्व इन्द्रजाल के समान है।
भाता है जगत का न कोई भी पदार्थ उसे
भाता जननी का बस उर-रस-पान है।
सो कर हो समय बिताता अधिकांश शिशु
करता किसी का मानो दिन रात ध्यान है।

[४]

परम अशक्त असहाय वह ज्ञात हुआ
पर अब कैसा रंग शिशु ने जमाया है।
परवश हो कर भी वश में सभी को किया
मानो वह कोई नया जादू सीख आया है।
अनायास उसने चुराया चित्त जग का है
प्रेम-वश लाल और हीरा कहलाया है।
माता के उदर से निकल कर आया पर,
उर में उसी के स्नेह रूप में समाया है।

—ठाकुर गोपाल शरण सिंह

परिचय

ठाकुर गोपाल शरण सिंह ताल्लुकेदारों में अपवाद हैं। इसका प्रमाण है आप का काव्य। ये नई गढ़ी (रीवाँ) के रहने वाले हैं।

खड़ी बोली में ललित और मधुर कवित्त सवैया लिखने में जितनी सफलता ठाकुर साहब को मिली है, उतनी कम लोगों को मिली होगी। छोटे-छोटे पुटकल विषयों पर आप ने बड़े ही मनोहर कवित्त लिखे हैं। आगे चल कर आप ने छाया वादी गीतों के ढंग पर भी रचनायें कीं। मानसी, मानसी, माधवी, संचिता, ज्योतिष्मती और वादनिनी आदि आप की प्रसिद्ध कविता पुस्तकें हैं। हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग से प्रकाशित होने वाली 'आधुनिक कवि' सिरीज में चौथा संग्रह आप ही का है।

अभ्यास

सामान्य प्रश्न—

१—कवि ने बच्चे को माता के स्नेह का सगुण रूप क्यों कहा है?

२—शिशु में नित्य नया नया सौन्दर्य क्यों दिखाई पड़ता है?

३—क्या शिशु संसार में अपने साथ कुछ भी ले कर नहीं आता?

४—शिशु के पास वह कौन सी शक्ति है जिस से वह सारे संसार को अपने अधिकार में रखता है?

रस-अलंकार—

१—पूरी कविता में कौन सा रस है? सूर की वात्सल्य रस की किसी कविता से इसकी तुलना करो।

२—प्रथम कवित्त में आने वाले सभी अलंकारों को लिखो।

३—उपमा अलंकार के सभी अंगों के नाम लिख कर उदाहरण द्वारा समझाओ।

छंद—१—मनहरण कवित्त का लक्षण लिखो तथा उदाहरण दो।

रचना—

१—अंतिम कवित्त का अर्थ लिखो।

आदेश

इस कवित्त को कण्ठस्थ करो।

[३४]

गोस्वामी तुलसीदास का महत्व

[मध्यकाल में चारणों का वीरगाथा काल समाप्त हो जाने पर हिन्दी कविता का प्रवाह भक्ति और ईश्वरीय प्रेम की ओर चल पड़ा। देश का ध्यान अपने बल, पराक्रम और पौरुष की ओर से हट कर भगवान की कृपा, शक्ति और सौन्दर्य की ओर चला गया। इसी से इस काल में वल्लभाचार्य, रामानन्द, कबीर, जायसी जैसे धर्म प्रचारक और पंथ-निर्माता हुए। इन्हीं लोगों के अनुयायी अनेक धर्मप्राण कवि भी हुए जिनमें सूर और तुलसी सर्वश्रेष्ठ हुए और जो आज भी हिन्दी-साहित्य गगन के सूर्य-चन्द्र कहे जाते हैं। तुलसीदास जी का महत्व इतना अधिक क्यों है, यही बात इस पाठ में बतलाई गयी है।]

राम-रसायन, सामंजस्य, साहचर्य, लावण्य

गोस्वामीजी द्वारा प्रस्तुत नवरसों का राम-रसायन ऐसा पुष्टिकर हुआ कि उसके सेवन से हिन्दू जाति विदेशीय मतों के आक्रमणों से भी बहुत कुछ रक्षित रही और अपने जातीय स्वरूप को भी दृढ़ता से पकड़े रही। उसके भगवान जीवन की प्रत्येक स्थिति में—खेलने-कूदने में, हँसने-रोने में, लड़ने-भिड़ने में, नाचने-गाने में, बालकों की क्रीड़ा में, दाम्पत्य-प्रेम में, राज्य-संचालन में, आज्ञा-पालन में, आनन्दोत्सव में, शोक-समाज में, सुख-दुःख में, घर में, सम्पत्ति में—उसे दिखाई पड़ते हैं। विवाह आदि शुभ अवसरों पर तुलसी रचित राम के मंगल गीत गाये जाते हैं, विमाताओं की कुटिलता के प्रसंग में कैकेयी की कहानी कही जाती है, दुख के दिनों में राम का वनवास स्मरण किया जाता है, वीरता के प्रसंग में उनके धनुष की भीषण टंकार सुनाई पड़ती है। सारांश यह कि सारा हिन्दू-जीवन राममय प्रतीत

होता है। इस प्रकार राम के स्वरूप का पूर्ण सामंजस्य हिन्दू-हृदय के साथ कर दिया गया है।

इस साहचर्य से राम के प्रति जो भाव साधारण जनता में प्रतिष्ठित हो गया है, उसका लावण्य जनता के सम्पूर्ण जीवन का लावण्य हो गया है। राम के बिना हिन्दू-जीवन नीरस है, फीका है। यही रामरस उसका स्वाद बनाये रहा और बनाये रहेगा। राम ही का मुँह देख कर हिन्दू जनता का इतना बड़ा भाग अपने धर्म और जाति के घेरे में पड़ा रहा। न उसे तलवार हटा सकी, न धन-मान का लोभ, न उपदेशों की तड़क-भड़क। जिन राम को जनता जीवन की प्रत्येक स्थिति में देखती आई, उन्हें छोड़ना अपने प्रिय से प्रिय परिजन को छोड़ने से कम कष्टकर न था। विदेशी कच्चा रंग एक चढ़ा एक छूटा, पर भीतर जो पक्का रंग था वह बना रहा। हमने चौड़ी मोहरी का पायजामा पहना, आदाब-अर्ज किया, पर राम-राम न छोड़ा। अब कोट-पतलून पहनकर बाहर डैम नान्सैंस कहते हैं, पर घर में आते ही फिर वही राम-राम। शीरीं-फरहाद और हातिमताई के किस्से के सामने हम कर्ण, युधिष्ठिर, नल-दमयन्ती सब को भूल गये थे, पर राम-चर्चा कुछ करते ही थे। कहना न होगा कि इस एक को न छोड़ने से एक प्रकार से सब कुछ बचा रहा, क्योंकि इस एक नाम में हिन्दू जाति का सार खींच कर रख दिया गया है। इसी एक नाम के अवलम्ब से हिन्दू जाति के लिए अपने प्राचीन स्वरूप, अपने प्राचीन गौरव के स्मरण की भवना बनी रही। रामनामामृत पान कर के हिन्दू जाति अमर हो गयी। इस अमृत को घर-घर पहुंचाने वाला भी अमर है। आज जो हम बहुत से भारतीय-हृदयों को चीर कर देखते हैं तो वे अभारतीय निकलते हैं। पर एक इसी कवि-केसरी को भारतीय सभ्यता, भारतीय रीति-नीति की रक्षा के लिए सब के हृदय-द्वार पर खड़ा देख हम निराश होने से बच जाते हैं।

गोस्वामी तुलसीदास

गोस्वामी जी की सब से बड़ी विशेषता है उनकी प्रबन्ध-पटुता, जिस के बल से आज 'रामचरित-मानस' हिन्दी समझने वाली हिन्दू जनता के जीवन का साथी हो रहा है। तुलसी की वाणी मनुष्य की प्रत्येक दशा तक पहुंचने वाली है, क्योंकि उसने रामचरित का आश्रय लिया है। रामचरित जीवन की सब दशाओं की समष्टि है, इसका प्रमाण 'रामशा प्रश्न' है जिस से लोग हर एक प्रकार की आने वाली दशा के सम्बन्ध में प्रश्न करते और उत्तर निकालते हैं। जीवन की इतनी दशाओं का पूर्ण मार्मिकता के साथ जो चित्रण कर सका, वही सब से बड़ा भावुक और सब से बड़ा कवि है. उसी का हृदय लोकहृदय-स्वरूप है। शृङ्गार, वीर आदि कुछ गिने-गिनाये रसों के वर्णन में ही नियुक्त कवि का अधिकार मनुष्य की दो एक वृत्तियों पर ही समझिये, पर ऐसे महाकवि का अधिकार मनुष्य की सम्पूर्ण भावात्मक सत्ता पर है।

अतः केशव, बिहारी आदि के साथ ऐसे कवि को मिलान के लिए रखना उनका अपमान करना है। केशव में हृदय का तो कहीं पता ही नहीं। वह प्रबन्ध पटुता भी उनमें नाम को नहीं जिसमें कथानक का सम्बन्ध निर्वाह होता है। उनकी 'रामचन्द्रिका' फुटकर पद्यों का संग्रह सी जान पड़ती है। बिहारी रीति ग्रन्थों के सहारे जबर्दस्ती जगह निकाल-निकाल कर दोहों के भीतर शृङ्गार रस के विभाव, अनुभाव और संचारी ही भरते रहे। केवल एक ही महात्मा और हैं जिनका नाम गोस्वामी जी के साथ लिया जा सकता है। वे हैं प्रेम-स्रोत-स्वरूप भक्तवर सूरदास जी। जब तक साहित्य और हिन्दी-भाषी हैं तब तक सूर और तुलसी का जोड़ा अमर है। पर भाव और भाषा दोनों के विचार से गोस्वामी जी का अधिकार अधिक विस्तृत है। जाने किसने 'यमक' के लोभ से यह दोहा कह डाला कि 'सूर-सूर तुलसी ससी उडुगन केसवदास, अब के कवि खद्योत सम जहं तहँ करत प्रकास'। यदि कोई पूछे कि जनता के हृदय पर सब से

अधिक व्यापक अधिकार रखने वाला हिन्दी का सब से बड़ा कवि कौन है तो उसका एकमात्र यही उत्तर ठीक हो सकता है कि भारत-हृदय, भारतीय कंठ भक्त-चूड़ामणि गोस्वामी तुलसीदास।
—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

परिचय

यह पाठ हिन्दी साहित्य के महान आलोचक स्वर्गीय आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की पुस्तक 'गोस्वामी तुलसीदास' से संकलित किया गया है। हिन्दी के समालोचना और निबन्ध साहित्य का एक सुव्यवस्थित रूप और उसका अपना निजी मानदण्ड स्थिर करने वाले शुक्ल जी ही हैं। इनके विषय जितने गूढ़ और मनोवैज्ञानिक हैं, उनकी भाषा भी वैसी ही गम्भीर्यपूर्ण और संस्कृत-गर्भित है। उन्होंने अपने निबन्धों में सरसता लाने के लिए बीच-बीच में व्यंग्य और विनोद का बड़ा ही सुन्दर पुट दिया है जो उनकी शैली को सब से अलग ला खड़ा करते हैं। आचार्य शुक्ल की सब से बड़ी विशेषता उनकी मनोवैज्ञानिक तथा ऐतिहासिक दृष्टि तथा विषय-वस्तु के मूल तक पहुँच जाने की उनकी कला ही है। उन्होंने हिन्दी के सब से बड़े शब्द-कोष हिन्दी-शब्द-सागर का सम्पादन किया, हिन्दी-साहित्य का सबसे अधिक प्रमाणिक इतिहास लिखा तथा जायसी-ग्रन्थावली का सम्पादन किया। इसके अतिरिक्त आपने समालोचना और निबन्धों की पुस्तकें भी लिखी; उपन्यासों और कविता का अनुवाद भी किया। विचार-वीथी, काव्य में रहस्यवाद, आदि आप के मौलिक ग्रन्थ तथा करुणा, शशांक, बुद्ध-चरित आदि अनूदित ग्रन्थ हैं। आप हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी में हिन्दी के अध्यापक थे और मरते समय तक साहित्य-सेवा करते रहे।

अभ्यास

सामान्य प्रश्न—

१—गोस्वामी तुलसीदासजी अमर क्यों हैं?

२—गोसाईंजी की सब से बड़ी विशेषता क्या है ?

३—आज का सारा हिन्दू-जीवन गोसाईंजी द्वारा प्रदर्शित मार्ग पर चल रहा है, इसका प्रमाण क्या है ।

४—सूर और तुलसी की तुलना करते हुए यह बताओ कि जनता के हृदय पर सब से अधिक विस्तृत अधिकार रखनेवाला इनमें कौन है ।

शब्दाध्ययन—

१—साहचर्य, लावण्य, दाम्पत्य, शब्द किन शब्दों से बने हैं ? इन्हीं की तरह के निम्न शब्दों से नये शब्द बनाओ:—गम्भीर, विधवा, सुन्दर, निकट, सुहृद, हास, सम ।

२—इस पाठ में जो उर्दू शब्द प्रयुक्त हुए हों उन्हें ढूँढो और यदि उनके समानान्तर हिन्दी के शब्द हों तो उन्हें भी बनाओ ।

३—विभाव, अनुभाव, संचारी और स्थायी भाव का अर्थ स्पष्ट करो ।

व्याकरण—

१—सन्धि विग्रह करो:—

वेदान्त, निर्वाह, रामाश्रा ।

रचना—

'तुलसीदास की महत्ता' इस विषय पर एक लेख लिखो ।

आदेश

रामचरित मानस को यदि अब तक न पढ़ा हो तो अब से पढ़ने का प्रयत्न करो ।

[३५]

गतिशील मानव

[विकासवाद के सिद्धान्त के अनुसार मनुष्य लाखों वरस पहले वैसा नहीं था जैसा आज दिखाई पड़ता है। तब उसका शरीर बन्दरों जैसा था। धीरे धीरे मनुष्य में बुद्धि तत्व की अधिकता होती गयी और उसके शरीर में भी परिवर्तन होता गया। प्रारम्भ में वह आखेट कर के या फल मूल पर ही जीवन बिताता था, क्रमशः उसने आग का आविष्कार किया, और पत्थर, ताँबा, लोहा, आदि के औजार बनाने लगा। फिर पशुपालन, खेती और उद्योग धन्धों का बारी-बारी से विकास हुआ। इसी क्रम से मनुष्य की सभ्यता और संस्कृति का प्रसार हुआ, अनेक साम्राज्य बने और मिटे, पर मनुष्य की प्रगति निरन्तर जारी रही। मनुष्य का यही निरन्तर विकास-क्रम और स्वतंत्रता-प्रेम ही इस कविता में दिखलाया गया है।]

उत्थान-पतन, भाग्य-विधाता, मुखरित, अभिचरण, अम्बर, शक्ति-वरण, जनपद, सम्मोहन, इंगित, मर्दन, उच्छृंखल

दो हाथोंवाले मानव हम।
दो पाँवोंवाले मानव हम।

बढ़ते आये हम तोड़-मोड़, युग-युग की सीमा के बन्धन
यह गति न हमारी बन्द हुई, आये कितने उत्थान-पतन
जलते आये अंगारों से, हम चलने वालों के लोचन
कर सकीं न पथ की बाधायें, जलनेवालों का तेज सहन

निज भाग्य-विधाता मानव हम।
जग के निर्माता मानव हम।

पद चिन्ह काल की छाती पर अंकित करते हम 'अग्निचरण'—
चढ़ते आये बन प्रगति-दूत, ज्योतित करते पथ का कण कण
निज जयध्वनि से मुखरित करते आये हम अम्बर का आँगन
निज वाणी से करते आये वसुधा में मधुर सुधा-सिंचन

नवजीवन-द्रष्टा मानव हम।
नवजीवन-स्रष्टा मानव हम।

तम की आँखों में हमने ही, भर दी थी पहली ज्योति-किरण
प्रस्तर के टुकड़ों को हमने, दे मन्त्र कर दिया शक्ति-वरण
इस वसुन्धरा से बलपूर्वक, लोहा कञ्चन कर लिये हरण
ऊसर को किया शस्य-श्यामल, जनपद बन गये गहन कानन

हैं शक्ति पुजारी मानव हम।
सुख के अधिकारी मानव हम।

हमने राज्यों को जन्म दिया, भावी-सुख का ले सम्मोहन
हमने धर्मों को रूप दिया, जाने ले कैसा आकर्षण
हमने ही कवि बन काव्य लिखे, हमने ही लिख डाले दर्शन
हमने केवल इतना सोचा, ये सभी हमारे सुख साधन

नित आशा-संबल मानव हम।
युग-युग से चंचल मानव हम।

जाने कितने साम्राज्य बने, इंगित में जब उठ गये नयन
जाने कितने साम्राज्य मिटे, जब हमने किया सिंह-गर्जन
भय मान सिहरने लगा सिन्धु, वसका यों किया मान-मर्दन
हम जीर्ण पुरातन के द्रोही, हम से निर्मित होता नूतन

जीवन के प्रेमी मानव हम।
नूतन के प्रेमी मानव हम।

हम सहन नहीं करने वाले शृङ्खला-बद्ध युग का क्रन्दन
हम वहन नहीं करने वाले, क्षण भर भी मुर्दों का जीवन
जलती आँखों से भस्म बना देंगे जग का यह जीर्ण भवन
अब अधिक न होने देंगे हम भूतल पर उच्छृङ्खल नर्तन

प्रलयंकर शंकर मानव हम।
अति भीम भयंकर मानव हम।

जादू के पुतले मानव हम, जीवन के पुतले मानव हम
हैं प्रलय प्रभंजन, मत समझो हैं दुबले पतले मानव हम
जागृति के पुतले मानव हम, नवगति के पुतले मानव हम
निश्चय हो प्रलय मचा देंगे, जिस क्षण भी मचले मानव हम

मर मिटने वाले मानव हम।
जी उठने वाले मानव हम।
दो हाथों वाले मानव हम।
दो पाँवों वाले मानव हम।

—शम्भूनाथ सिंह

अभ्यास

सामान्य प्रश्न—

१—मानव को दो हाथों और दो पावों वाला कहने से कवि का क्या तात्पर्य है।

२—इस कविता में मनुष्य के विकास का क्रम किस रूप में दिखलाया है?

३—मनुष्य को जादू का पुतला क्यों कहा है?

४—संसार के इतिहास से उदाहरण दे कर सिद्ध करो कि मनुष्य समाज दूसरों की गुलामी अधिक दिनों तक नहीं सह सकता।

शब्दाध्ययन—

१—इन शब्दों का अर्थ बताओ—अग्निचरण, नव जीवन-स्रष्टा।

२—कवि ने 'हमने आग का आविष्कार किया' यह बात कहने की जगह 'तम की आखों में ज्योति-किरण' भरना कहा है। इस तरह के और भी प्रयोग इस कविता में ढूँढ़ो।

रस-अलंकार—

१—इस कविता में अनुप्रास अलंकार कहा-कहा आये हैं!

रचना—

इसके दूसरे पद का अर्थ लिखो।

[३६]

मेरा भारत

[हम सभी 'भारत माता की जय' बोलते हैं; परन्तु हम में से कितने ऐसे हैं जो 'भारत माता' के सच्चे स्वरूप को जानते हैं ? न तो यह मिट्टी की कोई निर्जीव मूर्ति है और न नदियों, पहाड़ों का समूह। यह अपनी भौगोलिक सीमाओं से भी परे हैं। जो भारतीय जनता सदियों के थपेड़ों का सहती हुई अपराजित रूप से आज भी अपना काम कर रही है उसी के सुख दुख, नाश-निर्माण की कहानी का नाम भारतवर्ष है। भारत-भूमि के इस उदात्त रूप का दर्शन तभी हो सकता है जब हम इस लेख के लेखक प० जवाहरलाल नेहरू की तरह सम्पूर्ण भारत के कण कण से परिचित हों।]

अर्वाचीन, अस्तित्व, संस्कृति, उपाख्यान, दन्तकथा, माध्यम

भारत मेरे खून में समाया हुआ था और इस में कुछ ऐसी बात थी जो स्वभाव से मुझे उसकाती थी। फिर भी, अर्वाचीन और प्राचीन काल की बहुत सी बची हुई वस्तुओं को घृणा की दृष्टि से देखता हुआ, मैं एक विदेशी आलोचक के समान उस तक पहुँचा। यदि कहा जाय कि पश्चिमी दृष्टिकोण लिए हुये मैं उस तक पहुँचा और मैंने इस तरह देखा जिस तरह कोई पश्चिमी अर्थात् यूरोप-वासी मित्र देखता है तो अनुचित न होगा। मैं इस बात के लिए उत्सुक और चिन्तित था कि उसके दृष्टिकोण और रूपरेखा को बदल दूँ और उसे आधुनिकता के रंग में रंग दूँ। परन्तु हृदय में शंका उठती थी—मैं जो उस अतीत की देन को मिटाने का साहस करने जा रहा था, क्या मैं उस भारत को ठीक ठीक समझ भी सका था ? यह सही है कि हमारे सामने बहुत कुछ ऐसा था जिसे मिटा देना ही उचित था। लेकिन यदि
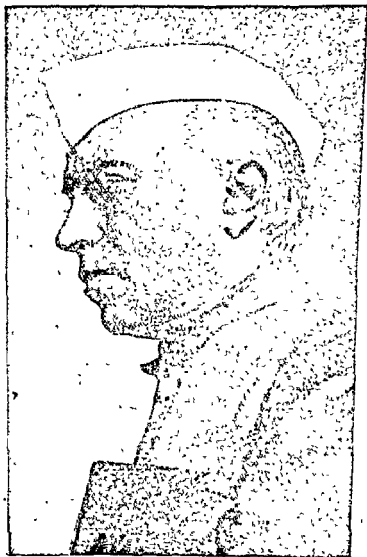
पंडित जवाहरलाल नेहरू

भारत में कोई ऐसी वस्तु न होती जो स्थायी, प्राणवान् और वस्तुत मूल्यवान् थी तो यह निश्चित है कि हजारों वर्षों तक वह अपना सभ्यता और अस्तित्व को बनाये न रख सकता था। यह वस्तु क्या थी?

उत्तर-पश्चिमी घाटी में मोहेनजोदडो के टीले पर में खडा हुआ। मेरे चारों तरफ इस प्राचीन शहर के मकान और गलियाँ थीं। कहा जाता है कि यह शहर पाँच हजार वर्ष पहले वर्तमान था और उस समय भी यहाँ एक पुराना और विकसित सभ्यता थी। प्रोफेसर चाइल्ड लिखते हैं— 'सिन्ध-सभ्यता, एक विशेष वातावरण में मानव जीवन के पूरे संगठन को सूचित करती है और यह युग युग के प्रयत्नों का ही परिणाम हो सकती है। यह एक स्थायी सभ्यता थी, उस समय भी उस पर भारत की अपनी छाप पड चुकी थी और वही आज की भारतीय संस्कृति का आधार है।" यह एक बडे अचरज की बात है कि किसी भी सभ्यता की इस तरह पाँच या छ हजार वर्षों की अटूट परम्परा बनी रहा हो और वह भी तब, जब वह स्थिर और गतिहीन न रही हो, क्योंकि भारत निरन्तर बदलता और उन्नति करता रहा है। ईरानियों, मिस्रवासियों, यूनानियों, चीनियों, अरबों, मध्यएशिया-निवासियों और भूमध्य सागर के लोगों से इस का गहरा सम्बन्ध रहा है। यद्यपि इस ने उन को प्रभावित किया और स्वय उन से प्रभावित हुई, तो भी उसकी सांस्कृतिक नींव इतनी दृढ थी कि वह अपना अस्तित्व बनाये रख सका। इस दृढता का रहस्य क्या है? यह आई कहाँ से?

मैंने भारत का इतिहास पढा और उस के विशाल प्राचीन साहित्य का भी एक अंश देखा। उस विचार-शक्ति का, साफ-सुथरी भाषा और ऊँचे दिमाग (ऊँची प्रतिभा) का, जो इस साहित्य के पीछे था, मुझ पर गहरा असर पडा। चीन तथा पश्चिमी मध्य एशिया से उन यात्रियों के साथ, जो बहुत पुराने

समय में यहां आये थे और जिन्होंने अपने यात्रा-विवरण लिखे हैं, मैंने भारत की सैर की। पूर्वी एशिया, अंकोर, बोरा बुदुर तथा अन्य बहुत से स्थानों में भारत ने जो कर दिखाया था उस पर मैंने सोचा। मैं उस हिमालय पर भी घूमा जिसका हमारी उन प्राचीन कथाओं तथा उपाख्यानों से गहरा सम्बन्ध रहा है, जिन्होंने हमारे विचार और साहित्य को बहुत अधिक प्रभावित किया है। पर्वतों के प्रेम और कश्मीर से मेरे सम्बन्ध ने मुझे विशेषतया पर्वतों की ओर खींचा। वहाँ मैंने न केवल आज का जीवन, उसकी शक्ति और सौन्दर्य को देखा, बल्कि बीते युगों के स्मारक भी देखे। उन वेगवती नदियों ने, जो इस पर्वतीय शृंखला से निकल कर भारतीय मैदानों में प्रवाहित होती हैं, मुझे अपनी ओर आकर्षित किया और अपने इतिहास के अनेक पहलुओं की याद दिलाई। वह सिन्धु जिस से हमारे देश का नाम हिन्द पड़ा और जिसे पार कर के हजारों वर्षों से न जाने कितनी जातियाँ, फिरके, काफिले तथा सेनाए आती रही हैं; वह ब्रह्मपुत्र, जो इतहास की धारा से किञ्चित् पृथक् रही है, किन्तु जो पुरानी कथाओं में जीवित है और पूर्वोत्तर पहाड़ों की गहरी दरारों के बीच से रास्ता बना कर भारत आती में है तथा फिर शान्त और मनोहारी प्रवाह के साथ पर्वतों और बनों में से हो कर बहती है; वह यमुना जिस नाम के साथ रास-नृत्य तथा क्रीड़ा की अनेक दन्तकथायें जुड़ी हुई हैं और वह गंगा, जिस से बढ़कर भारत का कोई दूसरी नदी नहीं; जिसने भारत के हृदय को मोह लिया है और जो इतिहास के आरम्भ से न जाने कितने कोटि जनों को अपने तट पर बुला चुकी है! गंगा की, उसके उद्गम से लेकर सागर में मिलने तक की, कहानी प्राचीन समय से ले कर आज तक के भारत की संस्कृति तथा सभ्यता की कहानी है; वह साम्राज्यों के उठने और नाश होने तथा विशाल और वैभवशाली नगरों की कहानी है. वह मनुष्य के . ...स और

साधना की, जीवन की पूर्णता, त्याग और वैराग्य की कहानी है और वह मनुष्य के अच्छे और बुरे दिनों की, इस के विकास और ह्रास की तथा उस के जीवन और मृत्यु की कहानी है।

मैंने अजन्ता, एलोरा, एलिफैण्टा तथा अन्य स्थानों से स्मारकों, खण्डहरों, पुरानी मूर्तियों तथा दीवारों पर बनी चित्रकारी को देखा तथा आगरा और दिल्ली की उत्तर कालीन इमारतें भी देखीं। इन इमारतों का एक-एक पत्थर भारत के बीते युग की कहानी कह रहा है।

अपने ही शहर इलाहाबाद में, या हरिद्वार के स्थानों में अथवा कुंभ मेले में मैं जाता और देखता कि वहाँ लाखों मनुष्य गंगा में नहाने के लिए आते हैं। इन के पूर्वज भी सारे भारत से इसी प्रकार हजारों वर्ष पहले से यहाँ आते रहे हैं। मैं चीनी यात्रियों तथा अन्य लोगों द्वारा लिखित तेरह सौ साल पहले के इन मेलों के वृत्तान्तों को स्मरण करता। उस समय भी यह मेले बड़े प्रचीन माने जाते थे, अतः इनका आरम्भ कब से हुआ, यह कहा नहीं जा सकता। मैंने मन में कहा—यह भी कितना गहरा विश्वास है जो हमारे देश के लोगों की अनेकानेक पीढ़ियोंसे इस प्रसिद्ध नदी की ओर खींचता रहा है।

मेरी इन यात्राओं ने, मेरी पठित सामग्री के माध्यम से बीते हुए युग की झाँकी दिखायी। अब तक के मेरे कोरे बौद्धिक ज्ञान में हार्दिक गुण-ग्राहकता का योग हुआ और धीरे-धीरे भारत के मेरे मानसिक चित्र में वास्तविकता का प्राण संचार होने लगा। मुझे अपने पूर्वजों की भूमि जीते-जागते लोगों में बसी हुई दिखाई पड़ने लगी, ऐसे लोगों में बसी हुई, जो हँसते थे और रोते भी, जो प्यार करना जानते थे और दुखः सहना भी। उन में जीवन का अनुभव रखने वाले और उसे समझने वाले भी थे। उन्होंने अपनी प्रतिभा द्वारा एक ऐसे भवन का निर्माण किया था जिस ने भारत को सांस्कृतिक दृढ़ता दी और वह हजारों वर्षों

तक स्थायी रह सको। इन बीते हुए समय के सैकड़ों जीते-जागते चित्र मेरे दिमाग में घूम रहे थे। जब मैं किसी विशेष स्थान पर जाता जिस से उनका सम्बन्ध होता, तो वे मेरे सामने आ जाते। बनारस के पास सारनाथ में मैं बुद्ध को उनके प्रथम उपदेश देते हुए स्वप्न में साक्षात् कर सका। उनके वे शब्द जो लिखे जा चुके हैं, ढाई हजार साल बाद एक दूरागत प्रतिध्वनि के समान सुनाई दिये। अशोक के स्तम्भ, जिन पर लेख खुदे हैं, अपनी शानदार भाषा में एक ऐसे मानव का हाल बताते जो सम्राट् होने पर भी किसी भी राजा या सम्राट् की अपेक्षा उच्च पद का अधिकारी था। फतहपुर सीकरी में अकबर अपने साम्राज्य के ऐश्वर्य को भूल कर सभी धर्मों के विद्वानों से कुछ नई बात सीखने और मनुष्य की चिरकालीन समस्या का हल खोजने की दृष्टि से वाद-विवाद करने बैठता।

इस तरह धीरे-धीरे भारत के इतिहास का गौरवपूर्ण दृश्य मेरे सन्मुख आता था और इस में उत्थान और पतन, जय और पराजय, दोनों ही दिखाई देते थे। पाँच हजार वर्षों के इतिहास, आक्रमणों तथा उथल-पुथल के बीच बनी रहने वाली इस संस्कृति-परम्परा में मुझे कुछ विशेषता जान पड़ी; वह परम्परा जो सामान्य जनों में फैली हुई थी और उन पर गहरा असर डाल रही थी।

—श्री जवाहरलाल नेहरू

परिचय

यह अवतरण पं० जवाहरलाल नेहरू की 'हिन्दुस्तान की कहानी' नामक पुस्तक से लिया गया है जो उनकी मूल अंग्रेजी पुस्तक 'डिसकवरी आफ इंडिया' का अनुवाद है। वे भारत के प्रधान मन्त्री तथा जननायक ही नहीं, अपितु अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के विचारक और लेखक भी हैं। उन्होंने संसार के इतिहास की पृष्ठभूमि में भारतीय इतिहास का गहन अध्ययन किया है। इसका परिचय उनकी 'विश्व इतिहास

की झलक' नामक पुस्तक से मिलता है। इसके अतिरिक्त 'पिता के पत्र पुत्री के नाम' 'मेरी कहानी' 'लड़खड़ाती दुनिया' आदि पुस्तकें भी उन्होंने लिखा है। उनकी सम्पूर्ण शिक्षा इंगलैंड में हुई। इस लिए हिंदी-भाषा भाषी प्रान्त के निवासी होते हुये भी वे अंग्रेजी भाषा के लेखक बने और यहाँ तक कि आधुनिक युग के सर्वश्रेष्ठ अंग्रेजी लेखकों में उनका महत्त्वपूर्ण स्थान है। कवित्वमयी भावुकता उनका मूल स्वभाव है। प्रस्तुत लेख में उनके भावुक हृदय की पर्याप्त झलक मिलती है। उन्होंने राजनीतिक आन्दोलन के दौरान में भारत की आत्मा का खोज की और उसी का यथार्थ विवरण यहाँ उपस्थित किया है। उन्हें भारत के ईंट पत्थर, प्राचीन अवशेष, नदी पहाड़ सभी एक प्रकार का सन्देश सुनाते जान पड़ते हैं।

अभ्यास

सामान्य प्रश्न—

१— वह क्या वस्तु है जिस के कारण भारत हजारों वर्षों तक अपनी सभ्यता का अस्तित्व बनाये रख सका?

२—भारत के प्राचीन भग्नावशेष क्या सन्देश देते हैं?

३—पं० जवाहरलाल नेहरू ने भारत सम्बन्धी बौद्धिक ज्ञान में हार्दिक गुण ग्राहकता का समावेश कैसे हुआ?

शब्दाध्ययन—

१—निम्नांकित शब्दों का अर्थ लिखो तथा वाक्यों में उनका प्रयोग करो—

अर्वाचीन, अस्तित्व, उपाख्या, माध्यम।

२—दन्तकथा और व्याख्यान का अन्तर बताओ।

व्याकरण—

१—निम्नलिखित वाक्य में बड़े अक्षरों वाले शब्दों की पद व्याख्या करते हुए पूरे वाक्य का संक्षिप्त वाक्य विश्लेषण करो—

यदि कहा जाय कि पश्चिमी दृष्टिकोण लिये हुये मैं उस तक

[४]

अब रजत-स्वर्ण-मंजरियों से लद गयी आम्र तरु की डाली,
झर रहे ढाक-पीपल के दल, हो उठी कोकिला मतवाली।
महके कटहल, मुकुलित जामुन, जंगल में झरबेरी झूली,
फूले आड़ू, नींबू, दाड़िम, आलू, गोभी, बैंगन, मूली।

[५]

पीले-मीठे अमरूदों में अब लाल-लाल चित्तियाँ पड़ीं,
पक गये सुनहले मधुर बेर, अँवली से तरु की डाल जड़ी।
लह-लह पालक मह-मह धनियाँ, लौकी औ सेम फलीं, फैलीं,
मखमली टमाटर हुए लाल, मिरचों की बड़ी हरी थैली।

गंजी को मार गया पाला, अरहर के फूलों को झुलसा,
हाँका करती दिन भर बन्दर अब मालिन की लड़की तुलसा।

—सुमित्रानन्दन पन्त

परिचय

यह कविता कविवर श्री सुमित्रानन्दन पंत के 'ग्राम्या' काव्य संग्रह से ली गई है। एफ० ए० तक ही शिक्षा प्राप्त करने के बाद उन्होंने स्वतन्त्र रूप से अध्ययन करने का व्रत ले लिया। पंत जी मूलतः सौन्दर्य, विशेषतः प्रकृति-सौन्दर्य के कवि हैं। कालाकाकर (अवध) में कुछ दिन रह कर इन्होंने मैदान के ग्रामीण जीवन को भी निकट से देखा। प्रस्तुत कविता में मैदानी ग्राम-श्री का ही चित्रण है। यह प्रकृति-वर्णन नहीं, प्रकृति-चित्रण है। पंत जी की प्रमुख पुस्तकें हैं, वीणा, पल्लव, ग्रंथि, गुंजन, युगान्त, युगवाणी, ग्राम्य, स्वर्ण-किरण, स्वर्णधूलि तथा उत्तरा।

अभ्यास

सामान्य प्रश्न—

१—इस कविता में किस ऋतु की ग्रामश्री का वर्णन है?

२—इस चित्रण में स्वाभाविकता और यथार्थता का कहाँ तक निर्वाह किया गया है ?

शब्दाध्ययन—

१—मरामल, तलक, फलक आदि किस भाषा के शब्द हैं ?

२—निम्न पदों का अर्थ स्पष्ट करो—

हरित रुधिर, सखिया मटर, रजत स्वर्ण मंजरियाँ।

रस-अलंकार—

१—'हाँका करती दिन भर बंदर अब मालिन की लड़की तुलसी' में कौन सा रस है ?

रचना—

१—निम्नांकित पद्यांश का अर्थ समझा कर अपनी भाषा में लिखो—

रंग रंग के फूलों ...... वृन्तों से वृन्तों पर।

२—कविता में आये हुये पेड़-पौधों के नाम की सूची तैयार करो।

पहुँचा, और मैंने उसे इस तरह देखा जिस तरह कोई पश्चिमी, अर्थात् यूरोपवासी मित्र देखता है तो अनुचित न होगा।

२—संधि-विच्छेद करो—

सूर्यास्त, पूर्वोत्तर।

रचना—

१—अधोलिखित गद्यांश का अर्थ लिखो—

मुझे अपने पूर्वजों की भूमि…………सुनाई देते हैं।

२—पूरे निबंध को संक्षेप में लिखो।

आदेश

भारतीय सभ्यता पर प्रकाश डालने वाले प्राचीन भग्नावशेषों, तथा स्थानों की सूची तैयार करो।

[३७]

ग्राम-श्री

[वसंत के आगमन से कुछ पूर्व गाँवों का सौन्दर्य बढ़ जाता है। धरती नवान्न से भर जाती है। चारों ओर हरियाली की मखमली चादर बिछ जाती है। कहीं-कहीं कोसों तक सरसों के पीले फूलों का समुद्र लहराता दिखाई पड़ता है। सभी वृक्षों हैं पीले आम में भी बौर आ जाते हैं। गंध से पागल हो कर कोकिल यौवन के रक्त का संचार हो जाता है और उनका हृदय गा उठता है। यही ग्राम की लक्ष्मी है। यह उसी लक्ष्मी का चित्र है।]

रुधिर, तैलाक्त, मुकुलित, दाडिम, हिल मिल, वृन्त

[१]

फैली खेतों में दूर तलक मखमल की कोमल हरियाली,
लिपटीं जिस से रवि की किरणें चाँदी की सी उजली जाली।
तिनकों के हरे-हरे तन पर हिल हरित रुधिर है रहा झलक,
श्यामल भूतल पर झुका हुआ नभ का चिर निर्मल नील फलक।

[२]

रोमांचित सी लगती वसुधा आयी जौ-गेहूं में बाली,
अरहर सनई की सोने की किंकिणियाँ हैं शोभाशाली।
उड़ती भीनी तैलाक्त गंध, फूली सरसों पीली-पीली,
लो, हरित धरा से झाँक रही, नीलम की कलि, तीसी नीली।

[३]

रंग रंग के फूलों में हिलमिल हँस रही संखिया मटर खड़ी,
मखमली पेटियों सी लटकी छीमियाँ छिपाये बीज-लड़ी।
फिरती हैं रंग-रंग की तितली रंग-रंग के फूलों पर सुन्दर,
फूले फिरते ज्यों फूल स्वयं उड़-उड़ वृन्तों से वृन्तों पर।

[३८]

बालचर और सैनिक शिक्षा

[संसार के अन्य देशों की भाँति भारत में भी स्कूलों में बालचर शिक्षा का काफी प्रचार हो चला है। इसी तरह कालेजों और विश्वविद्यालयों में चुने हुए विद्यार्थियों को सरकारी सहायता से सैनिक शिक्षा का भी प्रबन्ध रहता है। इन दोनों का ही घनिष्ठ सम्बन्ध है। स्वतन्त्र भारत में इनकी उपयोगिता और उद्देश्य बहुत कुछ बदल से गये हैं; यही बात इस पाठ में बताई गई है।]

बालचर शिक्षा (स्काउटिंग) का जन्म आधुनिक ढंग से सन् १९०८ में इंगलैण्ड में हुआ। सर राबर्ट बेडेन पावेल ने इसका प्रारम्भ किया। तब से सारे संसार में उत्तरोत्तर इसका प्रचार होता गया और आज संसार भर में लगभग दस बारह लाख बालक स्काउट हैं। हमारे देश में भी इसका काफी प्रचार है। उत्तर प्रदेश में इस संस्था का नाम 'सेवा समिति बालचर मण्डल' है। अब हमारा देश स्वतन्त्र हो गया है। अतः बदली हुई परिस्थितियों में बालचर-मण्डल का लक्ष्य और कार्यक्षेत्र क्या है तथा पहले क्या था, इसी बात पर हम विचार करेंगे।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि बालचर आन्दोलन के जन्मदाताओं ने युद्धकाल में सैनिकों के सहायतार्थ तथा नागरिकों की सेवा के लिये ही इसका प्रारम्भ किया था। परतन्त्र देशों में शासकों के साथ सहयोग करना ही इस संस्था का लक्ष्य था। हमारे देश में बालचर को अंग्रेज बादशाह के प्रति राजभक्ति की शपथ लेनी पड़ती थी। इसी कारण इस संस्था ने राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के संग्राम में कभी भी सहायता नहीं की और इसी से यह संस्था अपने पावन उद्देश्य–देशभक्ति, स्वावलम्बन, निस्वार्थ सेवा आदि कार्यों में पूर्ण

बालचरों की सेवा

सफल नहीं हो सकी। विदेशी सत्ता के होते हुये इन गुणों का आना असम्भव था।

सैनिक शिक्षा

इन माध्यमिक विद्यालयों में जिस तरह बड़े होने पर सच्चे नागरिक बनने के लिए अन्य शिक्षा के साथ-साथ बालचर-शिक्षा दी जाती है, उसी प्रकार सैनिक-शिक्षा की भी व्यवस्था अब हो रही है। बालचर-शिक्षा और सैनिक-शिक्षा का समान महत्व है और दोनों में कई बातें एक जैसी हैं भी। अनुशासन की दृढ़ता और देश की सेवा दोनों ही का लक्ष्य है; परन्तु दोनों का रास्ता भिन्न है। बालचर-शिक्षा देश के नागरिक जीवन को सुन्दर बनाने में सहायक होती है और सैनिक-शिक्षा देश की सैनिक शक्ति को सबल बनाती है। पहली द्वारा देश के भावी नागरिक तैयार होते हैं और दूसरी द्वारा देश की रक्षा करनेवाले भावी सैनिक और अफसर।

अंग्रेजी शासन काल में सैनिक-शिक्षा सरकारी सैनिक-विद्यालयों के अतिरिक्त केवल विश्वविद्यालयों में ही दी जाती थी। स्कूलों-कालेजों में केवल कवायद की और शारिरिक-शिक्षा (फिजिकल ट्रेनिंग) ही दी जाती थी। विदेशी सरकार डरती थी कि सब लोग सैनिक-शिक्षा प्राप्त कर लेंगे तो उसके विरुद्ध कभी विद्रोह भी कर सकते हैं। अब स्वतंत्रता मिल जाने पर इस बात की आवश्यकता आ पड़ी है कि देश के सभी नवयुवक सैनिक-शिक्षा प्राप्त करें और देश पर जब किसी शत्रु का आक्रमण हो तो देश-रक्षा में जुट जायँ। कई देशों में तो सभी वयस्क व्यक्तियों को सैनिक-शिक्षा प्राप्त करना अनिवार्य होता है और नागरिकों की एक नागरिक सेना (मिलीशिया) भी होती है। हमारे प्रान्त में भी प्रान्तीय रक्षा-दल ऐसी ही नागरिक सेना है। स्कूलों और विश्वविद्यालयों में जो सैनिक-शिक्षा दी जाती है उसका ध्येय यह है कि शत्रु से खतरे की अवस्था

राष्ट्रीय सैनिक शिक्षा दल

सफल नहीं हो सकी। विदेशी सत्ता के होते हुये इन गुणों का आना असम्भव था।

सैनिक शिक्षा

उच्च माध्यमिक विद्यालयों में जिस तरह बड़े होने पर सच्चे नागरिक बनने के लिए अन्य शिक्षा के साथ-साथ बालचर-शिक्षा दी जाती है, उसी प्रकार सैनिक-शिक्षा की भी व्यवस्था अब हो रही है। बालचर-शिक्षा और सैनिक-शिक्षा का समान महत्व है और दोनों में कई बातें एक जैसी हैं भी। अनुशासन की दृढ़ता और देश की सेवा दोनों ही का लक्ष्य है; परन्तु दोनों का रास्ता भिन्न है। बालचर-शिक्षा देश के नागरिक जीवन को सुन्दर बनाने में सहायक होती है और सैनिक-शिक्षा देश की सैनिक शक्ति को सबल बनाती है। पहली द्वारा देश के भावी नागरिक तैयार होते हैं और दूसरी द्वारा देश की रक्षा करनेवाले भावी सैनिक और अफसर।

अंग्रेजी शासन काल में सैनिक-शिक्षा सरकारी सैनिक-विद्यालयों के अतिरिक्त केवल विश्वविद्यालयों में ही दी जाती थी। स्कूलों-कालेजों में केवल कवायद की और शारिरिक-शिक्षा (फिजिकल ट्रेनिंग) ही दी जाती थी। विदेशी सरकार डरती थी कि सब लोग सैनिक-शिक्षा प्राप्त कर लेंगे तो उसके विरुद्ध कभी विद्रोह भी कर सकते हैं। अब स्वतंत्रता मिल जाने पर इस बात की आवश्यकता आ पड़ी है कि देश के सभी नवयुवक सैनिक-शिक्षा प्राप्त करें और देश पर जब किसी शत्रु का आक्रमण हो तो देश-रक्षा में जुट जायें। कई देशों में तो सभी वयस्क व्यक्तियों को सैनिक-शिक्षा प्राप्त करना अनिवार्य होता है और नागरिकों की एक नागरिक सेना (मिलीशिया) भी होती है। हमारे प्रान्त में भी प्रान्तीय रक्षा-दल ऐसी ही नागरिक सेना है। स्कूलों और विश्वविद्यालयों में जो सैनिक-शिक्षा दी जाती है उसका ध्येय यह है कि शत्रु से खतरे की अवस्था

राष्ट्रीय सैनिक शिक्षा दल

में ये लोग आसानी से सैनिक अफसरों का कार्य संभाल सकें। माध्यमिक-विद्यालयों में जो सैनिक-शिक्षा दी जाती है उसे जूनियर एन. सी. सी. (प्रारम्भिक राष्ट्रीय सैनिक शिक्षादल) कहते हैं।

इस शिक्षा का उद्देश्य यह भी है कि युद्ध काल में शिक्षित व्यक्ति सैनिक अफसरों का काम संभालने के साथ ही साथ युद्ध की दूसरी रक्षा पंक्ति में लड़ भी सकें। दूसरा उद्देश्य यह है कि शान्ति-काल में सैनिक शिक्षा के माध्यम से विद्यार्थियों में और उनके प्रभाव से जनता में भी अनुशासन की भावना पूर्ण रूप से भर जाय। 'कालचर-शिक्षा की तरह की सैनिक-शिक्षा से भी अनेक तात्कालिक लाभ होते हैं। प्रारम्भिक कवायद करना, एक साथ पांव और हाथ मिलाकर चलना, दौड़ना, बन्दूक चलाना आदि ऐसे कार्य हैं जिनसे स्वास्थ्य बहुत अच्छा हो जाता है। अफसर की आज्ञा पर तुरन्त काम करने की आदत पड़ जाती है जिससे विद्यार्थियों में अनुशासन प्रियता आती है। विद्यार्थियों को राइफल संभालने और निशाना लगाने की शिक्षा दी जाती है। उससे उनकी इन्द्रियों जैसे कि आँख, कान आदि की शक्तियाँ बड़ी तीव्र हो जाती हैं और रगों में स्फूर्ति आ जाती है। यही नहीं, निर्भीकता और कर्मठता भी उनमें कूटकूट कर भर जाती है।

सरकारी सेना को जो शिक्षा दी जाती है, विद्यालयों की सैनिक शिक्षा उसका प्रारम्भिक रूप है। सेना पंक्तियों में कैसे खड़ी होती है, कैसे मार्च करती और सलामी देती है, सेनाओं के स्तम्भ कैसे बनते हैं, चानमारी से निशाना कैसे लगाया जाता है, छिपकर दुश्मन पर हमला कैसे करना चाहिये, खतरनाक परिस्थिति में सैनिकों को अकेले या समूह में कैसे धावा करना चाहिए, रक्षात्मक और आक्रमणात्मक युद्ध कैसे होता है, इन सब बातों की शिक्षा विद्यार्थियों को दी जाती है। विद्यालयों के चुने हुए अध्यापक सैनिक केन्द्रों में जाकर पहले स्वयं शिक्षा

ग्रहण करते हैं और फिर अपने यहाँ आकर विद्यार्थियों को शिक्षा देते हैं। शरीर और बुद्धि की परीक्षा लेने के बाद विद्यार्थी सैनिक शिक्षा के लिये चुने जाते हैं। बालचरों में जैसे उन्हीं में से ट्रूप लीडर आदि होते हैं, उसी तरह सैनिक-शिक्षा-दल में भी विद्यार्थियों में से ही लान्स नायक, नायक, हवलदार, हवलदार मेजर और सहायक अफसर बना दिये जाते हैं जो औरों से काम कराते और सिखलाते हैं। उनकी देख-रेख करने के लिए विद्यालय के अध्यापक होते हैं जो सीख कर आये रहते हैं और जो सेकेण्ड लेफ्टिनेण्ट आदि कहलाते हैं। विश्वविद्यालयों में सैनिक-शिक्षा की देख-रेख करने के लिए सरकारी सेना में से एक अफसर भेजा जाता है जो कामांडिंग अफसर कहलाता है।

इस प्रकार सैनिक-शिक्षा का धीरे-धीरे विस्तार हो रहा है और अधिक से अधिक लोग इससे लाभ उठा कर देश की रक्षा करने के लिए अपने को तैयार कर रहे हैं। विद्यालयों में सैनिक-शिक्षा प्राप्त करने से सेना में नौकरी मिलने में भी आसानी होती है और इस दृष्टि से भी राष्ट्रीय सैनिक शिक्षा दल का महत्व अधिक है।]

किन्तु अब परिस्थिति बदल गई है। अतः बालचर आन्दोलन के उद्देश्यों को पूर्ण करने का पूरा अवसर हमारे सामने है। शिक्षा का उद्देश्य है बालकों को पूर्ण नागरिक बनाना। हमारी शिक्षा-प्रणाली में उसके लिये अभी अधिक व्यवस्था नहीं हो सकी है। बालचर आन्दोलन स्वतंत्र भारत के बालकों में सच्ची नागरिकता की भावना उत्पन्न करे तो यही उसकी सबसे बड़ी सफलता होगी। बहुधा यह देखा जाता है कि आधुनिक शिक्षा प्राप्त लोगों में शारीरिक परिश्रम और स्वावलम्बन की बहुत कमी है। बालचरों को बचपन से ही शारीरिक श्रम करने, अनुशासन में रहने और अपने हाथों से अपना काम करने की आदत सिखलाई जाती है। बड़े होने पर यदि वे आदतें बनी रह जाय तो वही मनुष्य देश

का सभ्य नागरिक कहलायेगा। स्वतन्त्र भारत के लिए बालचर-संस्था की और भी आवश्यकता है क्यों कि शांति युद्ध दोनों कालों में बालचर देश की बहुत बड़ी सेवा कर हैं। यही बालचर जो अनुशासन और स्वावलंबन में पले होते बड़े होने पर सेना में बहुत अच्छी तरह कार्य कर सकते हैं वहाँ भी नैतिकता और अनुशासन की भावना को ऊँचा ब सकते हैं।

बालचर शिक्षा में इस बात का पूरा पूरा ध्यान रक्खा जात है कि लड़कों के जीवन में चार बातें पर्याप्त मात्रा में आ जावें (१) स्वास्थ्य (२) सदाचार (३) सेवाभाव (४) स्वावलंबन। इस शिक्षा में खेलों की प्रधानता है जिससे लड़कों को उछलने-कूदने, दौड़नेऔर खुले मैदानों तथा जंगलों में कैम्प के लिए जाने का मौका मिलता है। इस प्रकार उनका स्वास्थ्य बहुत ही अच्छा रहता है बालचर-नियम के अनुसार बालकों को मनवचकर्म से पवित्र और प्रसन्नचित्त रहना पड़ता है इससे भी उनका स्वास्थ्य सुधरता है। सदाचार भी इस शिक्षा का प्रधान अंग है। बालकों में सच बोलने, बड़ों और छोटों के साथ यथोचित व्यवहार करने, अपने नेता या ट्रूपलीडर की आज्ञा मानने, सबके साथ सहयोग करने की आदतों पर बहुत अधिक जोर दिया जाता है। प्रतिज्ञा और नियमों का दृढ़ता पूर्वक पालन करने से धीरे-धीरे बालकों के चरित्र में पवित्रता, दृढ़ता और निस्वार्थता आ जाती है। इसी प्रकार बालचर दूसरों की सेवा करना, जैसे मेलों में, आग लगने पर, भूकम्प आने पर, तथा ऐसे ही अन्य अवसरों पर समाज की हर प्रकार सहायता करना भी अच्छी तरह सीख जाते हैं। बालचर-शिक्षा से सबसे बड़ा लाभ यह होता है कि बालकों में अपना काम स्वयं करने की आदत पड़ती है। कपड़े, शरीर और घर की सफाई करना, खाना बनाना, बिस्तर ढोना आदि काम बालचर के लिए बिलकुल आसान

जब कि दूसरे विद्यार्थी ये काम करने में शर्माते या
शड़ाते हैं।

आज की परिस्थिति में देश में ऐसे-ऐसे कार्य पड़े हुये हैं जिन्हें
ने के लिए मनुष्यों की बहुत कमी है। बालचरों को अपनी
म्पूर्ण शक्ति उनकी तरफ लगा देनी चाहिये। हमारे देश में
शिक्षा का अंधकार अभी बहुत अधिक है। साक्षरता-प्रचार
बालचर बहुत अधिक काम कर सकते हैं। यदि एक बालचर
ल में एक अशिक्षित व्यक्ति को भी साक्षर बना सके तो यह
सकी बहुत बड़ी सेवा होगी। इसी तरह उन्हें अपने स्कूल के
सपास के गाँवों की सफाई करने, हैजा-प्लेग आदि में सहायता
रने और ग्रामीण उद्योगों का प्रचार करके देश की गरीबी दूर
रने का कार्य भी अधिक से अधिक करना चाहिये।

—सम्पादक

अभ्यास

सामान्य प्रश्न—

१—बालचर-शिक्षा का प्रारम्भ कब और किसने किया था ?
२—बालचर-शिक्षा के क्या उद्देश्य हैं।
३—बालचर के जीवन में किन चार बातों का आना आवश्यक है ?
४—सैनिक-शिक्षा का क्या उद्देश्य है ? बालचर-शिक्षा और सैनिक-शिक्षा में क्या अन्तर है ?

शब्दाध्ययन—

इन शब्दों का अर्थ बताओ—कर्मठता, नैतिक, अनुशासन।

व्याकरण—

समास बताओ—देशभक्ति, विद्यालय,
वाक्य विग्रह करो 'इस शिक्षा का उद्देश्य यह भी है कि
दूसरी रक्षा पंक्ति में लड़ सकें।'

रचना—

अर्थ लिखोः—उच्च माध्यमिक विद्यालयों में जिस तरह ...... भावी
सैनिक और अफसर।

आदेश

यदि तुम्हारे विद्यालय में बालचर शिक्षा दल हो तो उसमें सम्मिलित
होकर व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करो।

हमारे प्राचीन गौरव ग्रंथ

[किसी जाति की सभ्यता और संस्कृति का पता उसके साहित्य और कला से ही लगता है। जिस जाति का साहित्य जितना ही समृद्ध होगा, वह उतनी ही सुसंस्कृत मानी जायगी। इस दृष्टि से जब हम भारतवर्ष के प्राचीन साहित्य को देखते हैं तो पता चलता है कि जब देशों में सभ्यता का उदय भी नहीं हुआ था उसी समय, यानी ईसा से कई हजार वर्षों पहले ही हमारी संस्कृति कितनी उन्नति कर चुकी थी। जिन ग्रंथों से हमारी संस्कृति का पता चलता है, उन्हीं का संक्षिप्त परिचय यहाँ दिया जा रहा है।]

• *परम्परा, वर्बर, संकलन, कर्मकाण्ड, उपाख्यान, वैयाकरण,*

किसी विद्वान ने ठीक ही लिखा है कि जो जाति अपनी प्राचीन साहित्यिक परंपरा का ध्यान नहीं रखती वह वर्बर हो जाती है। ऐसा होते कहीं देखा गया या नहीं, यह तो नहीं कहा जा सकता, परन्तु यह अवश्य कहा जा सकता है कि भारतवर्ष की प्राचीन साहित्यिक परंपरा ने उसे बार-बार वर्बर होने से बचाया है। संसार के और किसी देश को इतनी महान और प्राचीन परंपरा नहीं मिली है। अभी तो खोज का काम ही कितना हुआ है परन्तु आज से दस पन्द्रह वर्ष पहले तक संस्कृत साहित्य के जो प्राचीन ग्रन्थ प्राप्त हुए हैं उनकी संख्या आधा लाख के लगभग पहुंच चुकी है। अभी पाली प्राकृत और अपभ्रंश के ग्रन्थों की संख्या इनके अतिरिक्त है। नालंदा जैसे अनेक पुस्तकालयों के जलाये जाने पर भी ग्रन्थों की जो राशि प्राप्त हुई है उसी के आधार पर विदेशी विद्वानों ने स्वीकार किया है कि इतना सम्पन्न और महान साहित्य संसार में अन्य किसी जाति

का नहीं है। अब तो छापे की मशीन का राज है। लिखा कि छपा। परन्तु यह सुन कर आपको आश्चर्य होगा कि अभी हिन्दी पुस्तकों की संख्या प्राचीन संस्कृत ग्रंथों की संख्या तक नहीं पहुच सकी है।

हमारी प्राचीन साहित्य संख्या से ही सम्पन्न नहीं है, बल्कि गुण में भी महान है। तभी तो आज अनेक विद्वान यह कहते पाये जाते हैं कि मुझे ता प्राचीन ग्रन्थ ही अच्छे लगते हैं; इन नई पुस्तकों को ता पढ़ने की इच्छा ही नहीं होती। उनका कहना सच है। जिस साहित्य में वेद, वेदाङ्ग, महाभारत, रामायण, त्रिपिटक, रघुवश, अभिज्ञान-शाकुंतल, उत्तर रामचरित, काद-म्बरी जैसे महान ग्रथ पड़े हों, उसकी प्रशसा में जो कुछ भी कहा जाय, थोड़ा है। इसमें वर्णित सत्य तो युग-युग की वस्तु है ही, इसकी लिखावट भी आज की अपेक्षा कहीं अधिक टिकाऊ है। छापे की मशीन में तीस वर्ष पहले छपी हुई पुस्तकों के पन्ने तो गल ही गये, उनकी स्याही भी उड रही है। जितनी ही जल्दी ये लिखी जाती है, उतनी ही जल्दी गल भी जाती हैं। परन्तु ग्रथ हजार-हजार वर्ष पहले के लिखे पडे हैं और आज भी उनकी स्याही उतनी ही चटक है। प्राय ये ताड़पत्र पर लोहे की शलाका से कुरेद कर लिखी जाती थीं। फिर उन पर स्याही फेर दी जाती थी। बाद में तो भोज-पत्र पर भी लिखी जाने लगीं। ताडपत्र पर लिखी हुई सबसे प्राचीन पुस्तक आज से लगभग अठारह सौ वर्ष पुरानी है और भोज-पत्र पर लिखी हुई सबसे प्राचीन पुस्तक अब तक 'धम्मपद' प्राप्त हुई है जो आज से सत्रह सौ वर्ष पहले की लिखी हुई बतलाई जाती है।

यदि सभी प्राचीन ग्रंथों का सक्षेप में भी परिचय दिया जाय तो एक पुस्तक बन जायगी। विशेष महत्त्व वाले ग्रथों का बहुत सक्षिप्त परिचय देकर अन्य ग्रन्थों का केवल नाम गिना दिया जाता है। चारों वेदों के नाम सभी को ज्ञात हैं। इनमे सामवेद

और यजुर्वेद का अधिक सम्बन्ध तो यज्ञों आदि से है परन्तु, ऋग्वेद और अथर्ववेद अनेक दृष्टियों से बहुत महत्वपूर्ण हैं। इन्हें संहिता भी कहते हैं। कहा जाता है कि महाभारत कालीन व्यास ने अपने समय तक के बने हुए मंत्रों को एकत्र कर तीन संहितायें बनाईं—ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद। सामवेद में गाये मन्त्रों का संकलन है और यह ऋग्वेद का तिहाई है। यजुर्वेद चालीस अध्यायों का है और सामवेद से छोटा है। इन तीनों संहिताओं को 'त्रयी' कहते हैं। इससे बचे हुये मंत्रों को जो विषयानुसार इससे भिन्न थे और जिनका सम्बन्ध मोहन, मारण, उच्चाटन आदि से अधिक है मुनिवर ने अथर्व संहिता में रक्खा।

इसके पहले कि दो प्राचीन महान साहित्य-ग्रन्थ रामायण और महाभारत की चर्चा विस्तार पूर्वक की जाय कुछ अन्य प्रमुख ग्रन्थों का उल्लेख कर देना आवश्यक है। ये ग्रन्थ हैं—भारतीय षड्दर्शन, प्रसिद्ध बौद्धग्रन्थ त्रिपिटिक, चरक और सुश्रुत संहिता। ये षड्दर्शन वेद और उपनिषद से ही निकले हुये हैं। इनके नाम हैं सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, पूर्व मीमांसा और उत्तर मीमांसा (वेदान्त)। त्रिपिटक पाली में लिखा हुआ बौद्धों का महान ग्रंथ है। इसमें भगवान बुद्ध के उपदेशों और सिद्धान्तों का संग्रह है। चरक और सुश्रुत संहिता आयुर्वेद के प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। अथर्ववेद में आयुर्वेदिक औषधियों का प्रचुर वर्णन है। इन्हीं का सार एकत्र करके चरक और सुश्रुत ने अपनी प्रख्यात संहितायें तैयार कीं जो बाद में चलकर संसार के चिकित्सा-शास्त्र को प्रभावित करने में समर्थ हुई।

साधारणतया साहित्य में जिन ग्रन्थों का नाम सबसे पहले लिया जाता है, वे हैं रामायण और महाभारत। महाभारत का तो इतना सम्मान है कि इसे 'पंचम वेद' कहा जाता है। यह अपने युग-जीवन का इतिहास है। इसलिए महाभारत के रचयिता व्यास मुनि ने लिखा है कि जो सब जगह है वह इसमें

है और जो इसमें नहीं है वह कहीं नहीं है। सचमुच यह एक विश्व-कोश है। इसमें कुल अठारह पर्व हैं और कौरव पाण्डवों की कथा के अतिरिक्त शकुंतला, ययाति, नहुष, नल, विदुला, सावित्री आदि के अनेक उपाख्यान हैं जिनको लेकर बाद में अनेक महाकाव्य-नाटक लिखे गये। इन्हीं उपाख्यानों को लक्ष्य में रखकर विद्वानों ने कहा कि महाभारत तो महाकाव्य के भीतर महाकाव्य है। सात सौ श्लोकोंवाली जगत्प्रसिद्ध 'गीता' महाभारत के भीष्म पर्व का एक अंग है। सम्पूर्ण महाभारत उज्वल चरित्रों का वन है जिसमें श्रीकृष्ण का चरित सबसे महान है। भीष्म जैसा तेजस्वी और ज्ञानी, कर्ण जैसा गम्भीर और दानी, द्रोण जैसा गुरु और योद्धा, बलराम जैसा फक्कड़, भीम जैसा मस्तमौला स्वाभिमानी, युधिष्ठिर जैसा सत्यव्रत, अर्जुन जैसा वीर, विदुर जैसा नीतिज्ञ, कुन्ती जैसी तेजस्विनी नारियाँ, गान्धारी जैसी पतिपरायणा स्त्री-पुरुषों के चरित्र अन्यत्र दुर्लभ हैं।

'रामायण' महाभारत की तरह इतिहास नहीं बल्कि काव्य है। स्वयं इसके रचयिता वाल्मीकि मुनि ने प्रत्येक काण्ड के अन्त मे इसे 'आदि काव्य' कहा है। इसमें भी महाभारत जैसे अनेक छोटे छोटे उपाख्यान हैं परन्तु प्रधानतः राम-कथा का ही वर्णन है। बीच के पाँच काण्डों मे राम केवल महामानव के रूप में चित्रित हैं परन्तु आदि और अन्त के अंशों में उनके ईश्वरत्व की झलक मिल जाती है। वन्य प्रकृति के चित्रण की दृष्टि से किष्किंधा काण्ड का वर्षा शरद और हेमन्तवर्णन बहुत ही हृदयहारी है। अशोकवन की सीता के करुण चित्रण में तो आदि कवि रुला देते हैं।

—शम्भूनाथ सिंह

अभ्यास

सामान्य प्रश्न—

१—प्राचीन ग्रन्थ काहे पर लिखे जाते थे?

२—वेद कितने और कौन कौन हैं?

३—ब्राह्मण और उपनिषद् के बारे में क्या जानते हो ?
४—महाभारत और रामायण के रचयिता कौन हैं ? इन ग्रन्थों में क्या है, संक्षेप में बताओ।

शब्दाध्ययन—

१—निम्नलिखित शब्दों का अर्थ बताओ और वाक्य में प्रयोग करोः—
गेय, संगृहीत, प्रख्यात, सत्यव्रत, पतिपरायणा, उपाख्यान।
२—जैसे अध्यात्म से विशेषण बना आध्यात्मिक, उसी प्रकार संसार, परमार्थ, समाज, धर्म से विशेषण बनाओ।

व्याकरण—

समास बताओ
साहित्य-ग्रन्थ, षड् दर्शन, विश्वकोष, वन्य-प्रकृति
सन्धिविच्छेद करो—स्वाभिमानी, विषयानुसार, नीतिज्ञ, रत्नावली
वाक्य विग्रह करो—वैदिक साहित्य के पण्डितों ने तीन भाग में बाँटा है।

रचना

(१) अपने सभी प्राचीन ग्रन्थों की एक सूची बनाओ।

आदेश

इनमें से जो ग्रन्थ तुम्हें मिलें उन्हें अवश्य पढ़ो। हिन्दी में बहुतों का अनुवाद हो चुका है।

[४०]

बापू के प्रति

[यह कविता विश्ववन्द्य महात्मा गांधी के निधन के पश्चात लिखी गई है। कवि महात्मा जी के महान आदर्शों को बतलाते हुए उन आदर्शों के भविष्य के बारे में शंका प्रकट कर रहा है। महात्मा जी के आदर्शों की महानता को समझने वालों की तो सचमुच कोई कमी नहीं है किन्तु उन व्यक्तियों की निश्चित रूप से कमी है जो उन आदर्शों को अपने या राष्ट्र के जीवन में कार्यान्वित कर सकें। महात्मा जी ने सत्य और अहिंसा के जिस आदर्श-पथ का निर्माण किया है, उस पर राष्ट्र के भावी कर्णधार सभल कर चल सकेंगे, ऐसी आशा कवि को नहीं मालूम होती। अपने इसी भाव को उसने इस छोटी सी कविता में व्यक्त किया है।]

दावानल, दनुजता, महाकवच, अजगव

गुण तो निसंशय देश तुम्हारे गायेगा,
तुम सा सदियों के बाद कहीं फिर पायेगा,
पर जिन आदर्शों को लेकर तुम जिये मरे,
कितना उनको कल का भारत अपनायेगा ?

बायें था सागर औ, दायें था दावानल,
तुम चले बीच दोनों के साधक, संभल-संभल,
तुम खड्ग धार सा पंथ प्रेम का छोड़ गये,
लेकिन इस पर पावों को कौन बढ़ायेगा ?

जो पहन, चुनौती पशुता को दी थी तुमने,
जो पहन, दनुजता से कुश्ती ली थी तुमने,
तुम मानवता का महाकवच वह छोड़ गये,
लेकिन उसके बोझे को कौन उठायेगा ?

शासन-सम्राट डरे जिसकी टंकारों से
मवराती फिरंगेवारी जिसके वारों से
तुम सत्य-अहिंसा का अजगव तो छोड़ गये
लेकिन इस पर प्रत्यञ्चा कौन चढ़ायेगा ?

—बचन

परिचय

बचन जी का पूरा नाम है हरिवंश राय 'बचन'। आप प्रयाग विश्वविद्यालय में अंग्रेजी के प्राध्यापक हैं। अंग्रेजी का अध्यापक होते हुए भी बचन जी वर्तमान हिन्दी कवियों में बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। उनके काव्य की मुख्य विशेषतायें हैं स्पष्टता, सरलता और जीवन की गहरी यथार्थ अनुभूतियों का चित्रण। यही कारण है कि बचन आज के कवियों में सब से अधिक लोकप्रिय हैं उनकी 'मधुशाला' 'एकान्त संगीत' 'निशा-निमन्त्रण' 'सतरंगिणी', 'खादी के फूल' आदि पुस्तकें छप चुकी हैं।

अभ्यास

सामान्य प्रश्न—

१—गांधी जी के प्रमुख आदर्श क्या थे ?

२—कवि ने इस कविता में क्या शंका प्रकट की है ?

३—भविष्य में लोग गांधी जी के महान आदर्शों के पालन में समर्थ नहीं हो सकेंगे, इससे तुम कहां तक सहमत हो ?

शब्दाध्ययन—

इन शब्दों का अर्थ बताओ—दावानल, दनुजता, अजगव, प्रत्यञ्चा।

व्याकरण—

१—समास बताओ—शासनसम्राट, सूत्रधार, महावचन।

२—चुनौती, पशुता, अहिंसा, गुण, आदर्श, सत्य की पदव्याख्या करो।

रचना—

१—दूसरे और तीसरे पद्य का अर्थ लिखो।

२—'मानवता का महाकवच' और 'अहिंसा का अजगव' से क्या समझते हो?

आदेश

इस कविता को याद कर लो और अन्त्याक्षरी में सस्वर सुनाओ।

———

[४१]

विश्व-शान्ति का सीधा रास्ता

[दिसम्बर १६४६ में विश्वकवि रवीन्द्रनाथ टाकुर के शान्ति-निकेतन और महात्मा गांधी के आश्रम सेवाग्राम में सारे संसार के शान्ति के लिए प्रयत्न करने वाले लोगों का सम्मेलन हुआ था। उसमें चौंतीस देशों के लगभग एक सौ शान्तिवादियों ने भाग लिया था। सम्मेलन ने गान्धी द्वारा बताये गये अहिंसात्मक मार्ग को ही विश्व-शान्ति के लिए उपयुक्त बताया। सेवाग्राम में सम्मेलन प्रारम्भ होने के पहले डॉ० राजेन्द्र प्रसाद ने संसार के लोगों के पास सम्मेलन की ओर से रेडियो द्वारा जो सन्देश भेजा था, उसी का साराश यहाँ दिया जा रहा है।]

युद्धों का मूल कारण यह है कि कुछ व्यक्तियों या देशों की इच्छाएँ और महत्वाकांक्षाएँ ऐसी होती हैं जो अन्य व्यक्तियों या देशों की इच्छाओं और हितों के विरोध में होती हैं; इस प्रकार इन दोनों विरोधी इच्छाओं में टक्कर होती है। संसार में युद्ध तभी बन्द हो सकता है जब कि राष्ट्र या राष्ट्रों के नेता अपनी इच्छाओं और महत्वाकांक्षाओं को कम और संयमित करें। संसार ने एक पीढ़ी में दो विध्वंसकारी युद्धों को देखा। प्रत्येक युद्ध इसलिए लड़ा गया कि आगे फिर युद्ध होने न पाये, परन्तु उन सबका परिणाम उलटा ही हुआ और युद्ध आज तक बन्द नहीं हुए।

महात्मा गांधी ने देख लिया था कि जैसे कीचड़ को कीचड़ से धोने का प्रयास व्यर्थ होता है वैसे ही युद्ध को युद्ध द्वारा अथवा अधिक भयंकर अस्त्र-शस्त्रों के निर्माण द्वारा समाप्त करने का प्रयास भी व्यर्थ है। अतः उन्होंने युद्ध के कारणों की जड़

पर आघात करने का यत्न किया। मनुष्य-जीवन में सादगी लाकर, इच्छाओं पर संयम रखकर और अपने चारों ओर प्रेम और विश्वास का प्रसार करके तथा स्वयं निर्भय रहते हुए दूसरों को अभयदान देकर ऐसा किया जा सकता है। इस प्रकार के व्यक्तियों को तैयार करने के लिए हमारे सारे जीवन को नये ढांचे में ढालना होगा। यह वही रास्ता है जिसको चिरकाल से सभी धर्मों के पैगम्बरों और महात्माओं ने बताया है। मनुष्य को इस शिक्षा को याद ही नहीं करना है बल्कि इसके अनुसार अपने दैनिक जीवन को ढालना भी है। यह तभी संभव हो सकता है जब कि मनुष्य अपने लिए सादगी ग्रहण करे और दूसरों के प्रति सद्भावना रक्खे। व्यक्ति ही राष्ट्र का निर्माण करते हैं और अपने साथियों को कोरे उपदेश की अपेक्षा अपने जीवन द्वारा अधिक प्रभावित कर सकते हैं। वे अपने देश की सरकार को भी युद्ध-मार्ग से मोड़कर शान्ति-मार्ग पर चलने लिए प्रेरित कर सकते हैं।

जब हम विश्व-शान्ति की बात सोचते हैं तब यह सत्य नहीं भुला सकते कि मनुष्य-जाति का एक वर्ग दूसरे वर्ग को चूस रहा है। इसका कारण यही है कि शोषक वर्ग अपनी आवश्यकताओं का संयम न करके उसका गुलाम बन जाता है। वर्गों की तरह विभिन्न देशों में भी पारस्परिक संघर्ष का कारण यही शोषण ही है। अतएव सारे संसार में सब तरह का शोषण बन्द होना चाहिये, चाहे वह राजनीतिक हो, आर्थिक हो, सामाजिक हो या धार्मिक हो और चाहे एशिया में हो, यूरोप में हो या अफ्रीका में हो। ऐसी शिक्षा से ही शान्ति स्थापित हो सकती है जिससे मनुष्य अपनी अन्तरात्मा में ही आनन्द प्राप्त करना सीखे और दूसरों का शोषण किये बिना ही अपना काम चलावे। ऐसी शिक्षा ही सादगी और स्वावलंबन का पाठ पढ़ाती है।

[११]

विश्व-शान्ति का सीधा रास्ता

[दिसम्बर १९४९ में विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर के शान्ति-निकेतन और महात्मा गांधी के आश्रम सेवाग्राम में सारे संसार के शान्ति के लिए प्रयत्न करने वाले लोगों का सम्मेलन हुआ था। उसमें चौंतीस देशों के लगभग एक सौ शान्तिवादियों ने भाग लिया था। सम्मेलन ने गान्धी द्वारा बताये गये अहिंसात्मक मार्ग को ही विश्व-शान्ति के लिए उपयुक्त बताया। सेवाग्राम में सम्मेलन प्रारम्भ होने के पहले डॉ॰ राजेन्द्र प्रसाद ने संसार के लोगों के पास सम्मेलन की ओर से रेडियो द्वारा जो सन्देश भेजा था, उसी का सारांश यहाँ दिया जा रहा है।]

युद्धों का मूल कारण यह है कि कुछ व्यक्तियों या देशों की इच्छाएँ और, महत्वाकांक्षाएँ ऐसी होती हैं जो अन्य व्यक्तियों या देशों की इच्छाओं और हितों के विरोध में होती हैं; इस प्रकार इन दोनों विरोधी इच्छाओं में टक्कर होती है। संसार में युद्ध तभी बन्द हो सकता है जब कि राष्ट्र या राष्ट्रों के नेता अपनी इच्छाओं और महत्वाकांक्षाओं को कम और संयमित करें। संसार ने एक पीढ़ी में ही दो विध्वंसकारी युद्धों को देखा। प्रत्येक युद्ध इसलिए लड़ा गया कि आगे फिर युद्ध होने न पाये, परन्तु उन सबका परिणाम उलटा ही हुआ और युद्ध आज तक बन्द नहीं हुए।

महात्मा गांधी ने देख लिया था कि जैसे कीचड़ को कीचड़ से धोने का प्रयास व्यर्थ होता है वैसे ही युद्ध को युद्ध द्वारा अथवा अधिक भयंकर अस्त्र-शस्त्रों के निर्माण द्वारा समाप्त करने का प्रयास भी व्यर्थ है। अतः उन्होंने युद्ध के कारणों को जड़

पर आघात करने का यत्न किया। मनुष्य-जीवन में सादगी लाकर, इच्छाओं पर संयम रखकर और अपने चारों ओर प्रेम और विश्वास का प्रसार करके तथा स्वयं निर्भय रहते हुए दूसरों को अभयदान देकर ऐसा किया जा सकता है। इस प्रकार के व्यक्तियों को तैयार करने के लिए हमारे सारे जीवन को नये ढांचे में ढालना होगा। यह वही रास्ता है जिसको चिरकाल से सभी धर्मों के पैगम्बरों और महात्माओं ने बताया है। मनुष्य को इस शिक्षा को याद ही नहीं करना है बल्कि इसके अनुसार अपने दैनिक जीवन को ढालना भी है। यह तभी संभव हो सकता है जब कि मनुष्य अपने लिए सादगी ग्रहण करे और दूसरों के प्रति सद्भावना रक्खे। व्यक्ति ही राष्ट्र का निर्माण करते हैं और अपने साथियों को कोरे उपदेश की अपेक्षा अपने जीवन द्वारा अधिक प्रभावित कर सकते हैं। वे अपने देश की सरकार को भी युद्ध-मार्ग से मोडकर शान्ति-मार्ग पर चलने लिए प्रेरित कर सकते हैं।

जब हम विश्व-शान्ति की बात सोचते हैं तब यह सत्य नहीं भुला सकते कि मनुष्य-जाति का एक वर्ग दूसरे वर्ग को चूस रहा है। इसका कारण यही है कि शोषक वर्ग अपनी आवश्यकताओं का संयम न करके उसका गुलाम बन जाता है। वर्गों की तरह विभिन्न देशों में भी पारस्परिक संघर्ष का कारण यही शोषण ही है। अतएव सारे संसार में सब तरह का शोषण बन्द होना चाहिये, चाहे वह राजनीतिक हो, आर्थिक हो, सामाजिक हो या धार्मिक हो और चाहे एशिया में हो, यूरोप में हो या अफ्रीका में हो। ऐसी शिक्षा से ही शान्ति स्थापित हो सकती है जिससे मनुष्य अपनी अन्तरात्मा में ही आनन्द प्राप्त करना सीखे और दूसरों का शोषण किये बिना ही अपना काम चलावे। ऐसी शिक्षा ही सादगी और स्वावलंबन का पाठ पढ़ाती है।

आज मनुष्य की शक्ति और उसका ज्ञान इतना अधिक बढ़ चुका है कि उसकी सहायता से वह जीवन के लिए आवश्यक सभी वस्तुओं और साधनों को प्राप्त कर आराम और सन्तोष से जीवन बिता सकता है। किन्तु दुर्भाग्य से उस शक्ति और ज्ञान का उपयोग मनुष्य अपने संसार के लिए कर रहा है। मनुष्य उन्हें अपने हितकारी कार्यों में न लगा कर युद्ध की तैयारी में लगा रहा है। अतः विश्व के शान्तिवादियों का संसार के सभी साधारण स्त्री-पुरुषों से निवेदन है कि वे अपने व्यक्तिगत जीवन को इस प्रकार के ढाँचे में ढाल दें कि वह शान्तिमय बन जाय। संसार के सभी देशों से यह प्रार्थना है कि वे अपनी-अपनी शक्ति और साधनों का उपयोग मनुष्य का विध्वंस करने वाले अनेक प्रकार के अस्त्र बनाने में न करें बल्कि सुख और शान्ति उत्पन्न करनेवाले कार्यों में ही उनका उपयोग करें।

अभ्यास

सामान्य प्रश्न—

(१) युद्ध का मूल कारण क्या है ?
(२) सादगी और सद्भावना से क्या अर्थ समझते हो ?

शब्दाध्ययन—

निम्नलिखित शब्दों का अर्थ बताओ और वाक्य में प्रयोग करो—
विध्वंसकारी, सयमित, दैनिक, परावलम्बन, शोषण।

व्याकरण—

समास बताओ—महत्वाकांक्षा, अस्त्र शस्त्र, दुर्भाग्य।
वाक्य-विच्छेद करो जब हम विश्व-शान्ति की बात सोचते हैं...... "एक वर्ग दूसरे वर्ग को चूस रहा है।

रचना—

१—कीचड़ को कीचड़ से धोने का क्या अर्थ है, लिखो।

आदेश

पत्र-पत्रिकाओं में विश्व-शान्ति सम्बन्धी समाचार और निबन्ध खोज कर पढ़ो।

[४२]

राष्ट्र-ध्वज

[भारत के स्वातन्त्र्य संग्राम में राष्ट्रीय झण्डे का बहुत महत्व-पूर्ण स्थान रहा है। 'तिरंगे' के लिए लाखों जानें बन्दूक और गोलियो की शिकार हुईं। सभी राष्ट्र अपने राष्ट्र ध्वज को सम्मान की दृष्टि से देखते हैं क्योंकि राष्ट्र-ध्वज देश की सामूहिक चेतना का प्रतीक होता है। भारत ने स्वतन्त्रता प्राप्त की और उसका तिरंगा मन्दिरों, मीनारों, मसजिदों, घरों सभी स्थानों पर लहरा उठा। साथ ही साथ असंख्य नर नारियों का हृदय भी प्रसन्नता से खिल गया। जनता के हृदय नवीन कल्पना तथा नये भावों से भर गये। इस कविता में भी कवि ने उन्हीं भावों व्यक्त किया है।]

यह पुण्य पताका फहरे!

मुक्त वायु-मण्डल में अपनी मानस-लहरी लहरे।
जय मैत्री-करुणा-धारामय यह ध्वज-चक्र हमारा,
कभी क्रांति का सूर्य यही है, कभी शान्ति-शशि-तारा।
हमें विजय का सूत्र मिला है इसी चक्र के द्वारा,
रक्षक यही सुदर्शन अपना, किरण-कुसुम सा प्यारा।
काल-चक्र यह हाथ हमारे, लक्ष्य न क्यों थक थहरे!
यह पुण्य पताका फहरे।

कर्म-क्षेत्र हरा है अपना, ज्ञान शुभ्र मनमाना,
बलि बलवती, विनीत भक्ति का फल केसरिया बाना।
इस त्रियाग के तीर्थराज में हमें स्वधर्म निभाना,
अपनी स्वतंत्रता से सबका मुक्ति-मंत्र है पाना।
सब समान भागी जीवन के यही घोषणा थहरे!
यह पुण्य पताका फहरे।
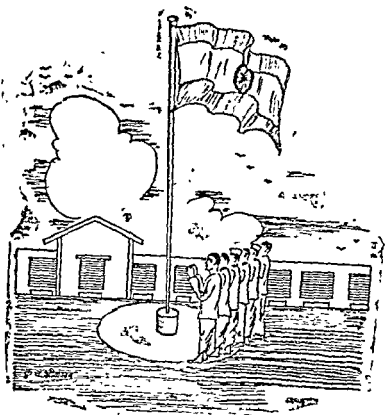
यह पुण्य पताका फहरे !

त्याग हमारा धर्म, किन्तु हम हरण कभी न सहेंगे,
दानवता से मानवता का वरण कभी न सहेंगे।
किसी आततायी का तुष्टीकरण कभी न सहेंगे,
और कहीं भी व्यर्थ किसी का मरण कभी न सहेंगे।
वह नरता ही क्या बर्बरता जिसके आगे ठहरे!
यह पुण्य पताका फहरे।

इस ध्वज पर जूझे स्वजनों पर ध्यान जहाँ आता है,
मस्तक ऊँचा होने पर भी मन भर-भर आता है।
निर्भय मृत्यु वरण कर ही नर अमर कीर्ति पाता है,
ऐसे पुत्रों की ही आशा रखती भूमाता है!
भूमाता का यह अंचल-पट छाया करके छहरे।
यह पुण्य पताका फहरे!

—श्री मैथिलीशरण गुप्त

परिचय

यह कविता राष्ट्र-कवि श्री मैथिलीशरण गुप्त ने स्वतन्त्रता दिवस के अवसर पर १५ अगस्त सन् १९४७ को लिखी थी। यह कविता अधिकांश पत्र-पत्रिकाओं के स्वतन्त्रता दिवस के विशेषांक में प्रकाशित हो चुकी है। गुप्तजी चिरगाँव (झाँसी) के निवासी हैं। गुप्तजी आधुनिक हिन्दी कविता के सर्वश्रेष्ठ कवियों में से हैं। आपकी कविताओं का अधिकांश राष्ट्रीय भावना से भरा रहता है। गुप्तजी की ओर पहले-पहल हिन्दी प्रेमियों का सबसे अधिक ध्यान खींचनेवाली उनकी 'भारत भारती' निकली। गुप्तजी ने सबसे अधिक प्रबन्धकाव्य लिखे हैं उनके नाम हैं, रंग में भंग, जयद्रथ-वध, विकट भट, प्लासी का युद्ध, गुरुकुल, किसान, पंचवटी, सिद्धराज साकेत और यशोधरा। साकेत और यशोधरा इनके दो बड़े प्रबन्ध-काव्य हैं।

अभ्यास

सामान्य प्रश्न—

१—'शान्ति का सूर्य' 'किरण-कुसुम' 'वियोग' से कवि का क्या तात्पर्य है ?

२—इस कविता के द्वारा कवि ने तुम्हारे सम्मुख किन आदर्शों को रखा है ?

३—यह ध्वज चक्र हमारी किस भावना का प्रतीक है ?

शब्दाध्ययन—

अर्थ लिखो—मानसलहरी, मुक्तिमन्त्र, तुष्टीकरण, चरण, शुभ्र।

व्याकरण—

पर्याय बताओ—शशि, सूर्य

१—पदव्याख्या करो—करुणा, वियोग, बर्बरता, फहरे, तुष्टीकरण, शुभ्र।

वाक्य विश्लेषण करो—इस ध्वज पर जूझी स्वजनों मन भर-भर जाता है।

रचना—

१—कविता की पहली चार पंक्तियों का अर्थ लिखो।

२—रक्षक यही सुदर्शन अपना सा प्यारा, का क्या अर्थ है, लिखो।

आदेश

झण्डोत्तोलन के समय इस गीत को समवेत स्वर में गाओ।